विशाखदत्त

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः यह सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

विशाखदत्त

मातृदत्त त्रिवेदी

साहित्य अकादेमी

Vishakhadatta : A monograph on the classical Sanskrit dramatist
by Matri Dutta Trivedi. Sahitya Akademi, New Delhi,

प्रथम संस्करण : 1986
द्वितीय संस्करण : 1988
तृतीय संस्करण : 1992

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली-110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली-110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड,
कलकत्ता-700 053
गूना बिल्डिंग द्वितीय तल नं. 304-305, अन्नासलाई तेनामपेट,
मद्रास-600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई-400 014
ए.डी.ए. रंगामंदिरा, 109 जे.सी. रोड, बंगलौर-560 002

मूल्य

मुद्रक
विमल ऑफसैट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

अनुक्रम

विशाखदत्त : जीवनवृत्त और कृतित्व

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ।।
(नीतिशतक, श्लोक 20)

संस्कृत के अप्रतिम नाटक 'मुद्राराक्षस' के प्रणेता विशाखदत्त भी एक ऐसे रससिद्ध कवीश्वर हैं, जिनका यशः शरीर आज भी उनकी इस महनीय कृति के कारण हम लोगों के बीच विद्यमान है। संस्कृत में भास, शूद्रक, कालिदास, भट्टनारायण और भवभूति आदि अनेक नाट्यकार हो गये हैं, लेकिन पूर्णतः राजनीतिप्रधान नाटक की रचना करने से जो यश विशाखदत्त को मिला है, वह संभवतः किसी को नहीं मिला। एच. एच. विल्सन ने हमारे नाटककार को कालिदास और भवभूति से हेय बताते हुए यह कहा है कि विशाखदत्त की कल्पना-शक्ति उन दोनों कवियों की ऊँचाई को नहीं पाती। इनकी कृति में कठिनता से कोई शानदार या सुन्दर विचार मिलेगा।[1] यह ठीक है कि कालिदास की भाषा और भावों की नैसर्गिक सुकुमारता तथा भवभूति की हृदयस्पर्शी करुणा विशाखदत्त की कृति में नहीं पायी जाती, लेकिन नाटकीयता, चरित-चित्रण की उदात्तता, परिस्थिति के अनुसार घटनाओं की सर्जनात्मकता एवं रसभावादि की सुन्दर योजना आदि अनेक गुणों के कारण यह नाटक किसी भी प्रकार हेय नहीं है। वस्तुतः कालिदास और भवभूति से विशाखदत्त की तुलना करना इस दृष्टि से समीचीन नहीं है, क्योंकि कालिदास के नाटक शृंगाररस-प्रधान हैं और भवभूति का **उत्तररामचरित**, जिससे इनकी सर्वाधिक ख्याति है, करुणरस-प्रधान। विशाखदत्त का नाटक इन दोनों से भिन्न राजनीति-प्रधान है, जिसमें

1. 'सेलेक्ट स्पेसिमेन्स ऑन द थियेटर ऑव द हिन्दूज', खण्ड II

आदि से अन्त तक चाणक्य की कूटनीति प्रपञ्चित की गयी है, जैसा कि प्रसिद्ध टीकाकार ढुंढिराज ने प्रारम्भ में कहा है—

अत्यद्भुतविधादत्र संविधानान्महाकविः।
प्रपञ्चयति चाणक्यमुखेन कुटिलं नयम्॥
× × ×
कलौ पापिनि कौटिल्यनीतिः सद्यः फलप्रदा।
इत्यभिप्रेत्य कौटिल्यस्तामेवात्र प्रयुक्तवान्॥

यद्यपि भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का कथानक भी कुछ कूटनीति से युक्त है, लेकिन वह 'मुद्राराक्षस' की प्रखरता के सम्मुख नहीं टिक पाता। यह कहने में किसी भी प्रकार की अत्युक्ति न होगी कि चाणक्य की कूटनीति से संवलित जिस नाट्यकला का इसमें निदर्शन है, वह अन्य नाटकों में सर्वथा अनुपलब्ध है। आज चाणक्य का जैसा स्वरूप और स्वभाव हमारे मानस-पटल पर अंकित है, वह मुख्यतः इसी नाटक की देन है। चाणक्य की कूटनीति की योजना जैसी इस नाटक में है, वैसी इसके आकर ग्रन्थों—बृहत्कथा के संस्कृत रूपान्तर, क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा सोमदेव के 'कथा सरित्सागर' एवं 'विष्णुपुराण' और 'श्रीमद्भागवत' आदि में कहीं भी देखने को नहीं मिलती। इस सम्बन्ध में ढुंढिराज के ये शब्द स्मरणीय हैं, जो उन्होंने अपनी व्याख्या के अन्त में कहे हैं—

मुद्राराक्षससनाटकं लिखितवान् कौटिल्यनीतेः कलां।
गन्तुं यत्र विहारिणो प्लवनतो नीत्यम्बुधौ सज्जनाः॥

वंश-परिचय

संस्कृत के अधिकांश कवियों की भाँति विशाखदत्त ने भी अपने विषय में विस्तृत जानकारी नहीं दी। उन्होंने प्रारम्भ में सूत्रधार के मुख से केवल इतना कहलाया है कि वह सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र हैं और उनके पिता का नाम भास्करदत्त या पृथु है, जो महाराज कहलाते थे। यद्यपि मुद्राराक्षस की कुछ हस्तलिखित प्रतियों और सुभाषित ग्रन्थों में इनका विशाखदेव नाम भी मिलता है, लेकिन पिता और पितामह के नामों के आधार पर विशाखदत्त नाम ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इनके पिता के नाम के विषय में विद्वानों में बड़ा वैमत्य है। कुछ पाण्डुलिपियों में 'महाराजभास्करदत्तसूनोः' पाठ मिलता है और कुछ में 'महाराजपदभाक्पृथुसूनोः'। काशिनाथ त्र्यम्बक तेलंग और प्रो.

के. एच. ध्रुव ने 'भास्करदत्त' पाठ को ही ठीक माना है; जबकि मोरेश्वर रामचन्द्र काले और शारदारञ्जन राय ने 'पृथु' पाठ को।

वस्तुत: यह भूल प्रो. विलसन से प्रारम्भ हुई, जिन्होंने 'पृथु' पाठ को शुद्ध मान उन्हें अजमेर का चौहानवंशीय राजा 'पृथुराज' बताया है।[2] लेकिन उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि इसके साथ वटेश्वरदत्त नाम समानता की दृष्टि से कठिनाई उपस्थित करता है। तेलंग ने वहीं प्रस्तावना में इसका खण्डन करते हुए यह कहा है कि चौहानवंशीय पृथु 'पृथुराय' या 'पृथुराज' के रूप में जाने जाते हैं, जबकि यहाँ उन्हें महाराज कहा गया है। अत: विशाखदत्त के पिता अजमेर के पृथुराय नहीं हो सकते। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् अल्फ्रेड हिल्लेब्राण्ट (Alfred Hillebrandt) ने स्वसम्पादित मुद्राराक्षस में 'भास्करदत्त' पाठ को ही शुद्ध माना है। निस्सन्देह विशाखदत्त के पिता ने अत्यधिक उन्नति कर महाराज की पदवी प्राप्त की, जबकि उनके पिता केवल सामन्त ही थे। सामन्त और महाराज में विशेष अन्तर है, जिसे शुक्रनीति में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

लक्षकर्षमितो भागो राजतो यस्य जायते।
वत्सरे वत्सरे नित्यं प्रजानां त्वविपीडनैः ॥

सामन्तः स नृपः प्रोक्तो यावल्लक्षत्रयावधि।
तदूर्ध्वं दशलक्षान्तो नृपो माण्डलिकः स्मृतः ॥

तदूर्ध्वं तु भवेद्राजा यावद्विंशतिलक्षकः।
पञ्चाशल्लक्षपर्यन्तो महाराजः प्रकीर्तितः ॥

(शुक्रनीति 1/183-185)

अर्थात् जिसे अपने राज्य से प्रजा को बिना कष्ट दिये हुए एक लक्ष रजत कर्ष (चाँदी का सिक्का) से लेकर तीन लक्ष तक वार्षिक कर मिलता हो, उसे सामन्त कहते हैं। पुन: दशलक्ष पर्यन्त वार्षिक कर मिलने पर वह माण्डलिक राजा और बीस लक्ष तक वार्षिक कर मिलने पर राजा कहलाता है। तत्पश्चात् पचास लक्ष तक वार्षिक कर प्राप्त करने से वह व्यक्ति महाराज पद का भागी होता है। इससे स्पष्ट है कि विशाखदत्त के पिता ने अत्यधिक उन्नति की और अपने को 'महाराज' सम्मानसूचक पद से अलंकृत किया। अत:

---

2. 'द थियेटर ऑव द हिन्दूज, खण्ड II, पृ० 128
तेलंग द्वारा सम्पादित मुद्राराक्षस की भूमिका, पृष्ठ 12

विशाखदत्त ने अपने पिता के वैभवपूर्ण काल में जीवन-यापन किया और राजनैतिक चातुरी अर्जित की, जिसकी झलक मुद्राराक्षस में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है।

जन्मस्थान

संस्कृत के अधिकांश कवियों की भाँति विशाखदत्त का भी जन्म-स्थान अज्ञात है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह किस प्रान्त के रहनेवाले थे; लेकिन अपने नाटक में उन्होंने उत्तर भारत का जैसा भौगोलिक चित्रण किया है, उससे पता चलता है कि वह निःसन्देह उत्तर भारत के ही निवासी थे। वह पश्चिम में पारसीक (फ़ारस) देश से लेकर पूर्व में बंगाल तक के भू-भाग से भली-भाँति परिचित थे। पर्वतक-पुत्र मलयकेतु की सेना में कुलूत, मलय, कश्मीर, सिन्धु और पारसीक देश के राजा और उनकी सेनाएँ सम्मिलित थीं।[3] ये सभी देश भारत के उत्तर-पश्चिम में अवस्थित थे। चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर की सेनाओं ने जब पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया तो उस समय उनमें शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक और वाह्लीक सैनिक थे।[4] ये सभी भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त के निवासी थे। मलयकेतु सेना की व्यूहरचना कर जब पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने की योजना बनाता है, तब उसकी सेना में खश, मगध, गान्धार, यवन, शक, चीन अथवा चेदि, हूण और कुलूत आदि देशों के सैनिकों का उल्लेख है।[5] इनमें से भी अधिकांश सैनिक उत्तर-पश्चिम भारत के रहने वाले थे। मगध देश, जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी, उससे विशाखदत्त भली-भाँति परिचित थे। पाटलिपुत्र गंगा के किनारे स्थित था। चन्द्रगुप्त का राजप्रसाद, जिसका नाम सुगांगप्रसाद था, गंगा के तट पर बना हुआ था। शोण नदी को पार कर पाटलिपुत्र में जाया जा सकता था। इसी प्रकार के अन्य कथन हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि विशाखदत्त को इस भू-प्रदेश की विशेष जानकारी थी। मगध देश के प्रति हमारे नाटककार का अत्यधिक लगाव था, जैसा कि गौडाङ्गनाओं के वर्णन से प्रतीत होता है कि भौंरों के समान काले उनके कुञ्चित केश थे और वे अपने कपोलों पर लोध्रपुष्पों का पराग लगाती थी।[6] गौड देश उस समय का मगध देश ही है। इस प्रकार का वर्णन वही

---

3. मुद्रा. 1/20
4. वही, 122
(इस पुस्तक में मुद्राराक्षस की पृष्ठसंख्या तेलंग के संस्करण के आधार पर दी गयी है)
5. वही 5/11
6. मुद्रा. 5/23

व्यक्ति कर सकता है, जिसने किसी प्रदेश के रहनेवालों के आचार-व्यवहार आदि का बड़ा सूक्ष्म अवलोकन किया हो। इस आधार पर यदि विशाखदत्त को मगधदेशाभिजन माना जाय तो असंगत न होगा।

शारदारञ्जन राय ने अपने मुद्राराक्षस के संस्करण में 'न शाले: स्तम्ब-करिता वप्तुर्गुणमपेक्षते' (1/3) तथा 'मुसलमिदमियं च पातकाले मुहुरनुयाति कलेन हुंकृतेन' (1/4)—इन वर्णनों के आधार पर उन्हें बंगाली सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, यद्यपि धान के लहलहे गुच्छे उत्तर प्रदेश में भी दिखायी पड़ते हैं। 'पौरैरङ्गुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमान: शनै:' (6/10)—इस श्लोक में जिस लोक-प्रथा का उल्लेख है, वह भी यहाँ प्रचलित है। प्राय: स्त्रियाँ अपने शिशुओं को गोद में लेकर चन्द्रमा की ओर अँगुली उठाकर उन्हें देखने के लिए प्रेरित करती हैं। इसके अतिरिक्त काशपुष्प (2/7; 3/20) राजहंस (3/20) तथा सारस (3/7) आदि का जैसा वर्णन है, उससे भी यही सिद्ध होता है कि विशाखदत्त उत्तर प्रदेश और विहार आदि प्रदेशों से भली-भाँति परिचित थे; क्योंकि यहीं शरद् ऋतु में काशपुष्पों की छवि देखने को मिलती है और यहीं नदियों किनारे राजहंस और सारस-कुल विचरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। विशाखदत्त ने तृतीय अंक के 19वें और 24वें श्लोक में दक्षिण समुद्र का भी वर्णन किया है, जिसमें विविध वर्णों की मणियाँ चमकती रहती हैं और जिसका जल चञ्चल महामत्स्यों से आन्दोलित होता रहता है, परन्तु दक्षिण देश के उस समय के नगरों एवं नदियों आदि के वर्णन के अभाव से उन्हें दक्षिण देश का निवासी नहीं माना जा सकता। वह निस्सन्देह उत्तर भारत के निवासी थे, लेकिन किस भूभाग-विशेष को अलंकृत करते थे, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: विशाखदत्त काव्य-गगन के देदीप्यमान चद्र हैं, जिन्हें सभी लोग चाहते हैं और अपने-अपने गृहों को आलोकित करनेवाला बताते हैं। वह कालिदास के समान सभी के प्रिय हैं और सभी के अपने हैं।

वर्ण और धर्म

विशाखदत्त ने अपने जन्म-स्थान आदि की भाँति वर्ण के विषय में भी कुछ नहीं कहा; लेकिन नाटक में ब्राह्मणों के प्रति जो आदर भाव व्यक्त हुआ है, उससे स्पष्ट होता है कि वह ब्राह्मण थे। नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार और नटी के वार्तालाप में ब्राह्मणों के लिए अनेकश: 'भगवत्' शब्द का प्रयोग हुआ है। उदाहरणत:—

1. कथय किमद्य भवत्या तत्र भवतां ब्राह्मणानामुपनिमन्त्रणेन कुटुम्बकमनुगृहीतम् ?
2. आर्य, आमन्त्रिता मया भगवन्तो ब्राह्मणा:।
3. तत्प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक:।

इस शब्द के प्रयोग से ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गयी है। इससे उनका ब्राह्मण होना ध्वनित होता है। परन्तु रणजीत सीताराम पण्डित ने 'द सिग्नेट रिंग' (The Signet Ring) में उन्हें क्षत्रिय बताया है और यह तर्क दिया है कि विशाख का अर्थ होता है शंकर-पुत्र स्वामी कार्तिकेय। इनकी कृपा से ही नाटककार का जन्म हुआ होगा, अत: उनका नाम विशाखदत्त रखा गया। विशाख का सम्बन्ध युद्ध से था; क्योंकि वह देवताओं के सेनापति थे। युद्ध करना मुख्यत: क्षत्रियों का धर्म है। इस नाटक में राजदरबार का जैसा वर्णन है और राजा के सन्निध्य में रहनेवालों का राजा के प्रति कैसा बर्ताव होना चाहिए, इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि विशाखदत्त दरबारी जीवन और वहाँ के लोगों के आचार-व्यवहार से भलीभाँति परिचित थे। इससे उनका क्षत्रिय होना सिद्ध होता है। लेकिन वस्तुत: विचार करने से उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर उन्हें क्षत्रिय नहीं कहा जा सकता। परशुराम जीवनपर्यन्त युद्ध करते रहे, लेकिन कर्मणा वह क्षत्रिय न होकर ब्राह्मण ही थे। बाणभट्ट ने सम्राट हर्ष के दरबार का जैसा वैभवपूर्ण वर्णन किया है, पह अप्रतिम है; लेकिन उस वर्णन से उनका क्षत्रियत्व नहीं सिद्ध होता है। वह भी ब्राह्मण थे। इस नाटक के दो प्रमुख पात्र चाणक्य और राक्षस ब्राह्मण हैं। एक चन्द्रगुप्त का महामन्त्री है तो दूसरा नन्दों का। राक्षस युद्ध-कला में पारंगत होते हुए भी ब्राह्मण ही है। युद्धकाल में उसके विलक्षण शौर्य का प्रतीक मुद्राराक्षस का यह श्लोक है—

यत्रैषा मेघनीला चरति गजघटा राक्षसस्तत्र याया-
देतत्पारिप्लवाम्भ: प्लुति तुरगबलं वार्यतां राक्षसेन।
पत्तीनां राक्षसोऽन्तं नयतु बलमिति प्रेषयन्मह्यमाज्ञा-
मज्ञासी: प्रीतियोगात् स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम्।। (2/14)

इससे उसका वीरत्व व्यञ्जित होता है; वर्णत्व नहीं। इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने की है कि जिस प्रकार भवभूति और भट्टनारायण, जो ब्राह्मण थे और उन्होंने अपने नाटकों में विदूषक को नहीं रखा, उसी प्रकार विशाखदत्त ने भी अपने नाटक में विदूषक को कोई स्थान नहीं दिया। विदूषक अपनी विकृत आकृति, वाणी और वेष आदि से विरह-व्याकुल राजा का मनोविनोद करता रहता है। वैसे यह ब्राह्मण होता है लेकिन इससे ब्राह्मणों की दीन-हीन दशा की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उपर्युक्त नाटककारों के नाटकों में विदूषक का अभाव है। अत: भवभूति और भट्टनारायण की भाँति विशाखदत्त का ब्राह्मणत्व ही सिद्ध होता है।

विशाखदत्त किस विशिष्ट मतवाद के माननेवाले थे, यह भी निश्चित

रूप से ज्ञात नहीं होता। प्रारम्भ में दोनों नान्दी-पद्यों में भगवान शंकर की स्तुति होने से कुछ लोगों ने उन्हें शैव सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। प्रथम नान्दी-पद्य में शिव का पौराणिक स्वरूप चित्रित किया गया है, जिनके वामांग में पार्वती विराजमान हैं, ललाट में चन्द्रकला है और शिर पर जटाजूटों में निलीन हैं गंगा। दूसरे में, शिव को ताण्डव नृत्य करते हुए दिखाया गया है, जिनके तृतीय नेत्र में अग्नि-ज्वाला दहकती रहती है, जिससे वह सृष्टि का संहार करते है। इस श्लोक के मूल में शिवमहिम्न स्तोत्र का यह श्लोक प्रतीत होता है—

> मही पदाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
> पदं विष्णोभ्र्राम्यिद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
> मुहुर्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
> जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ।। ।। ।।

पुन: तृतीय अंक में वैतालिक के मुख से प्रस्तुत शरद्-वर्णन से अप्रस्तुत शिव के शरीर का जैसा वर्णन कराया गया है (श्लोक 20), उससे भी शिव के पौराणिक स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है। उनके शरीर पर चिता की भस्म लगी हुई है; मस्तक में चन्द्रमा विराजमान है; जिसकी किरणों से गजासुर का चर्म जो वह धारण किये हैं, आर्द्र होता रहता है; गले में नर-कपालों की माला है और वह अट्टहास करते हैं।

इस प्रकार के शिव-वर्णन से विशाखदत्त को शैव नहीं कहा जा सकता; क्योंकि एक ओर जहाँ वैतालिक ऐशीतनु का वर्णन करता है, वहाँ दूसरी ओर (श्लोक 21) वह शेष-शय्या पर जागे हुए भगवान् विष्णु का भी वर्णन करता है। पौराणिक धारणा है कि आषाढ़ में हरिशयनी एकादशी को भगवान् शेषशय्या पर शयन करते हैं और कार्तिक में देवोत्थानी एकादशी को जागते हैं (शेते विष्णु: सदाषाढे कार्तिके प्रतिबोध्यते)। इससे उनकी विष्णु-भक्ति प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त भरत वाक्य में भी उन्होंने वराहवपुर्धारी भगवान विष्णु की स्तुति की है, जिन्होंने प्रलयकाल में डूबी पृथ्वी को अपनी दन्तकोटि पर धारण किया—

> वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपा
> यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री। (7/18)

इन सब वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि विशाखदत्त वैदिक धर्म अथवा

ब्राह्मणधर्म के अनुयायी थे, जिसमें क्या शिव, क्या विष्णु सभी देवताओं के प्रति भक्ति-भाव अर्पित किये जाते हैं। नाटककार ने सूर्य के लिए भगवान् शब्द का प्रयोग कर अपनी श्रद्धा को प्रकट किया है।[7] उन्होंने जैनियों और बौद्धों के प्रति भी आदर भाव व्यक्त किया है।[8] इससे उनकी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय मिलता है। यह ब्राह्मण धर्म की ही विशेषता है, जिसमें सभी धर्मों के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया जाता है, किसी से द्वेष नहीं किया जाता (**मा विद्विषाव**) है।[9] यद्यपि विशाखदत्त सभी धर्मों के प्रति उदार थे, लेकिन वह मुख्य रूप में हरिहरात्मिका भक्ति के उपासक थे। कालिदास ने भी इसी प्रकार की भक्ति अपनायी है। 'कुमारसम्भव' उनकी शिव-भक्ति का परिचायक है तो 'रघुवंश' विष्णु-भक्ति का।

कालिदास की भाँति विशाखदत्त ने भी शिव और विष्णु के प्रति समान रूप से अपनी भक्ति-भावना प्रदर्शित की है। नाटक का प्रारम्भ शिव-स्तुति से होता है तो अवसान वराहावतारधारी भगवान् विष्णु की स्तुति से। बीच में शिव और विष्णु का एक-सा स्तवन है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि विशाखदत्त की वही हरिहरात्मिका भक्ति है, जिसका उल्लेख भगवत्पाद शंकर ने गंगास्तुति में किया है—

भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती।

कृतियाँ

विशाखदत्त की एकमात्र पूर्णतः उपलब्ध कृति 'मुद्राराक्षस' है, जिससे उनका यश सर्वत्र छाया है। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र गुणचन्द्र के 'नाट्यदर्पण' और भोज के 'श्रृंगार प्रकाश' में उद्धृत सन्दर्भों से, जिन्हें प्रो. ध्रुव ने अपने मुद्राराक्षस के संस्करण के अन्त में परिशिष्ट 'द' के रूप में दिया है, ऐसा प्रतीत होता है कि विशाखदत्त ने 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक एक और नाटक की रचना

---

7. अस्ताभिलाषी भगवान सूर्यः (पृ० 215)
   अये, अस्ताभिलाषी भगवान् भास्करः। पृ० 215
8. आर्हतानां प्रणमामि ये ते गम्भीरतया बुद्धेः।
   लोकोत्तरैर्लोके सिद्धिं मार्गैर्गच्छन्ति ॥ (मुद्रा० 5/2)
   × ×
   बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना ॥ (वही, 7/5)
9. कठोपनिषत् शान्तिपाठ

की थी। मुद्राराक्षस के समान इसका भी विषय राजनैतिक है, यद्यपि वैसी उदात्तता इसमें नहीं पायी जाती। संभवतः यह नाटक छह या सात अंकों का होगा; क्योंकि 'नाट्यदर्पण' में 'देवीचन्द्रगुप्तम्' से जो नैष्क्रामिकी ध्रुवा ली गयी है, उससे यही ज्ञात होता है कि नाटक अभी समाप्ति की ओर नहीं है। यह नैष्क्रामिकी ध्रुवा पञ्चम अंक के अन्त में है। इस नाटक में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय के द्वारा शकों की पराजय और सौराष्ट्र की विजय वर्णित है। गुप्तवंशीय सम्राट् रामगुप्त ने शकों की राजधानी गिरिपुर पर आक्रमण किया, लेकिन वह शत्रुओं के चंगुल में फँस गये। शक-सम्राट् ने उन्हें इस शर्त पर छोड़ना चाहा कि वह अपनी सुन्दरी पत्नी ध्रुवदेवी को शकराज को समर्पित करें। रामगुप्त के छोटे भाई चन्द्रगुप्त इस शर्त से बड़े ही क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने बड़े भाई को मुक्त कराने की एक योजना बनायी। वह ध्रुवदेवी के वेष में शत्रु के स्कन्धावार में गये और शक-नरपति को मार डाला; पुनः आक्रमण करके शकराज्य को जीत लिया। 'शृंगारप्रकाश' में इस आशय का एक उद्धरण मिलता है—स्त्रीवेष—निह्नुतश्चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारं गिरिपुरं शकपतिवधायागमत्। इसी प्रसंग का उल्लेख बाण ने अपने 'हर्षचरित' के षष्ठ उच्छ्वास में इस प्रकार किया है—अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्च चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयत्। हर्षचरित के टीकाकार शंकर ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया हैं—

> शकानामाचार्यः शकाधिपतिः। चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवी प्रार्थयमानश्चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन रहसि व्यापादितः।

श्रीधरदास-प्रणीत 'सदुक्तिकर्णामृतम्' में विशाखदत्त के नाम से एक श्लोक दिया हुआ है, जिसमें विभीषण रावण से राम की वीरता का वर्णन करते हुए कहता है—

> रामोऽसौ भुवनेषु विक्रमगुणैर्यातः प्रसिद्धि परा—
> मस्मदभाग्यविपर्ययाद् यदि परं देवो न जानाति तम्।
> वन्दीवैष यशांसि गायति मरुद् यस्यैकबाणाहति।
> श्रेणीभूतविशालतालविवरोद्गीर्णैः स्वरैः सप्तभिः॥ (1/46/5)

अर्थात् राम अपने पराक्रम-गुणों से सभी भुवनों में प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं; लेकिन हमारे दुर्भाग्य से आप उन्हें नहीं जानते। उनके एक बाण के प्रहार से पंक्तिबद्ध विशाल (सात) ताल वृक्षों के छिद्रों से निकले हुए सप्तस्वरों से यह मरुत्

---

10. हर्षचरित, पृ० (99-200) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1937

उनका यशोगान कर रहा है।

मम्मट ने इसे काव्यप्रकाश के चतुर्थ उल्लास में पदैकदेशों की वीररस-व्यञ्जकता के उदाहरण रूप में उद्धृत किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि विशाखदत्त ने रामायण-कथा पर आश्रित किसी नाटक की रचना की होगी, जिसका यह पद्य है; लेकिन निश्चित रूप से इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा सकता।

पीटर्सन के द्वारा सम्पादित 'सुभाषितावली' में दो अनुष्टुप् विशाखदेव के नाम से दिये हुए हैं। यद्यपि पीटर्सन ने विशाखदेव को विशाखदत्त ही माना है; लेकिन प्रो. ध्रुव उन्हें भिन्न व्यक्ति मानते हैं। वे अनुष्टुप् इस प्रकार हैं—

तत् त्रिविष्टपमाख्यातं तन्वङ्गया यद्वलित्रयम् ।
येनानिमिषदृष्टित्वं नृणामप्युपजायते ।।
सेन्द्रचापैः श्रिता मेघैर्निपतान्निर्झरा नगाः ।
वर्णकम्बलसंवीता बभुर्मत्ता द्विपा इव ।। (सुभा० 1538,1728)

समय-निरूपण

विशाखदत्त के जन्मस्थान की भाँति उनका समय भी अद्यावधि अनिर्णीत ही है। विद्वानों ने अन्तःसाक्ष्य और बाह्यसाक्ष्य के आधार पर उन्हें भिन्न-भिन्न काल का माना है। अन्तःसाक्ष्य के रूप में मुद्राराक्षस और उसकी विविध पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनका उल्लेख तेलंग ने अपने मुद्राराक्षस के संस्करण की भूमिका में किया है और बाह्यसाक्ष्य के रूप में उन ग्रन्थों की गणना होती है, जिनमें मुद्राराक्षस के श्लोक उद्धृत हैं अथवा इसके इतिवृत्त का उल्लेख है। इन अन्तरंग और बहिरंग प्रमाणों के आधार पर विशाखदत्त का समय चौथी शताब्दी ई० से लेकर बारहवीं शताब्दी तक माना जाता है। बारहवीं शताब्दी निश्चित रूप से अन्तिम सीमा है।

बाह्यसाक्ष्य

श्रीधरदास ने जो बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के समय में थे, उनके शासन के सत्ताइसवें वर्ष में (शक सं० 1127) अर्थात् 1205 ई० में 'सदुक्तिकर्णामृतम्' की रचना की। उन्होंने विशाखदेव के नाम से दो श्लोकों को उद्धृत किया है, जो पीछे दिये गये हैं। यदि पीटर्सन का यह कथन ठीक है कि विशाखदेव विशाखदत्त ही हैं, तो वह निश्चित रूप से 1205 ई० के पूर्व के माने जायेंगे। भोज ने, जिनका समय ग्यारहवीं शताब्दी ई० है, अपने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में मुद्राराक्षस के दो श्लोकों को उद्धृत किया है। प्रथम श्लोक इस प्रकार दिया हुआ है—

> उपरि घनं घनपटलं दूरे दयिता किमेतदापतितम्।
> हिमवति दिव्यौषधयः कोपाविष्टः फणी शिरसि ॥

मुद्राराक्षस में यह श्लोक चन्दनदास का स्वगत कथन है और मूलतः प्राकृत में है, जिसकी संस्कृत-छाया इस प्रकार है—

उपरि घनं घनरटितं दूरे दयिता किमेतदापतितम् ।
हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः ।। (1/22)

दूसरा श्लोक मुद्राराक्षस का 'प्रत्यग्रोन्मेष जिह्मा०' (3/21) है, जो सरस्वतीकण्ठाभरण में कुछ पाठ-भेद के साथ उद्धृत है। वहाँ 'जृम्भितैः' के स्थान पर 'जृम्भणैः' और 'अभिताम्रा' के स्थान पर 'अतिताम्रा' है। यद्यपि भोज ने वहाँ यह नहीं बताया है कि ये श्लोक मुद्राराक्षस से उद्धृत हैं, लेकिन इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि ये श्लोक मुद्राराक्षस के ही हैं । अतः विशाखदत्त का समय ग्यारहवी शताब्दी ईसा पूर्व ठहरता है। धनञ्जय (दसवी शताब्दी) के दशरूपक पर उनके छोटे भाई धनिक द्वारा लिखी हुई अवलोकवृत्ति में दो स्थलों पर मुद्राराक्षस का उल्लेख है। प्रथम उल्लेख इस प्रकार है—

तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्—

चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटालगृहे रहः ।
कृत्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो नृपः ।।
योगानन्दयशःशेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः ।
चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महौजसा ।

(दशरूपक 1/68 पर वृत्ति)

दूसरा उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

मन्त्रशक्त्या, यथा मुद्राराक्षसे राक्षससहायादीनां चाणक्येन स्वबुद्धया भेदनम् । अर्थशक्त्या तत्रैव, यथा पर्वतकाभरणस्य राक्षसहस्तगमनेन मलयकेतु-सहोत्थायिभेदनम् । (दशरूपक 2-55 पर वृत्ति)

प्रथम उद्धरण की सत्यता पर प्रो. ध्रुव और डॉ. हाल[2] ने सन्देह व्यक्त किया है। प्रथम उद्धरण के श्लोक क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी के हैं, गुणाढ्य की बृहत्कथा के नहीं; क्योंकि वह तो पैशाची प्राकृत में थी, जबकि ये श्लोक संस्कृत में है । 'बृहत्कथामञ्जरी' एक प्रकार से पैशाची बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर है। प्रो. ध्रुव क्षेमेन्द्र को धनञ्जय से लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद का मानते हैं।[3] ऐसी स्थिति में क्षेमेन्द्र के श्लोक धनञ्जय के दशरूपक में कैसे आ सकते हैं ? यदि

1. मुद्राराक्षस की भूमिका, पृष्ठ 23 की पाद-टिप्पणी ।
2. दशरूपक, Fitzedward Hall द्वारा Bibliotheca Indica, 1865 में प्रकाशित ।
3. मुद्राराक्षस की भूमिका, पृष्ठ 23 की पाद-टिप्पणी ।

दूसरे श्लोक को प्रामाणिक मानें तो विशाखदत्त धनञ्जय के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। अर्थात् उनका दशम् शताब्दी से पूर्व का होना निश्चित होता है।

दशरूपक के द्वितीय प्रकाश के प्रारम्भ में नायक के गुणों के प्रसंग में स्थिर नायक के विषय में अवलोककार धनिक कहते हैं—

स्थिरः—वाङ्मनः क्रियाभिरचञ्चलः ।...यथा भर्तृहरिशतके—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
> प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः ।
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
> प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति ।। (भर्तृहरि, नीतिशतक श्लोक 27)

इसके चतुर्थ पाद का पाठान्तर "प्रारब्धमुत्तमगुणास्त्वमिवोद्वहन्ति" है, जो मुद्राराक्षस के प्रसंग के अनुकूल है। यह श्लोक मुद्राराक्षस का ही है, जो नीतिशतक में आया है, ऐसी मान्यता प्रो. ध्रुव की भी है। भर्तृहरि के शतकत्रय में इसी प्रकार अन्य कवियों के भी श्लोक मिलते हैं। भर्तृहरि का समय सप्तम शताब्दी माना जाता है। अतः विशाखदत्त उससे पूर्व के सिद्ध होते हैं। माघ के 'शिशुपाल वध' के 16 वें सर्ग के 84 वें श्लोक के अन्तिमपाद 'इत्थं नित्यविभूषणा युवतयः संपत्सु चापत्स्वपि' की समानता मुद्राराक्षस के प्रथम अंक के चौदहवें श्लोक के चतुर्थ पाद 'ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च' से मिलती है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन दोनों कवियों में से किसी एक का दूसरे पर प्रभाव है। इसी प्रकार मुद्राराक्षस के इस श्लोक—

> जानन्ति तन्त्रयुक्तिं यथास्थितं मण्डलमभिलिखन्ति ।
> ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावुंपचरन्ति ।। (2/1)

तथा शिशुपाल वध के इस श्लोक—

> तन्त्रवापविदा योगैर्मण्डलान्यधितिष्ठता ।
> सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः ।। (2/88)

में समानता परिलक्षित होती है। यदि यहाँ हम यह मानते हैं कि मुद्राराक्षस का शिशुपालवध पर प्रभाव है तो विशाखदत्त का माघ से पूर्वकालिक होना सिद्ध होता है। माघ का समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध (अनुमानतः650-700) माना

जाता है। अतः विशाखदत्त का समय इससे पूर्व का माना जा सकता है। इसी प्रकार का साम्य 'किरातार्जुनीयम्' के इस श्लोक—

> उपजापसहान् विलङ्घयन स विधाता नृपतीन् मदोद्धतः।
> सहते न जनोऽप्यधः क्रिया किमु लोकाधिकधाम राजकम्॥(2/47)

और मुद्राराक्षस के इस श्लोक—

> सद्यः क्रीडारसच्छेदं प्राकृतोऽपि न मर्षयेत्।
> किमु लोकाधिक धाम बिभ्राणः पृथिवीपतिः॥ (4/10)

में पाया जाता है। यद्यपि तेलंग ने, 'किमु' के स्थान पर 'किनु' पाठ माना है, लेकिन माघ के श्लोक के आधार पर 'किमु' पाठ ही ठीक प्रतीत होता है। शारदारञ्जन राय ने मुद्राराक्षस के संस्करण में 'किमु लोकाधिकं धाम०' इसी पाठ को अपनाया है। भारवि का समय कीथ ने[4] छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध (550 ई०) और कृष्णामाचार्य ने[5] छठी शताब्दी का प्रारम्भ माना है, अतः श्लोक में यदि विशाखदत्त का प्रभाव माघ पर है तो वह माघ से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

इन ग्रन्थों की अपेक्षा मुद्राराक्षस और मृच्छकटिक में कुछ अधिक समानता दिखायी पड़ती है। मुद्राराक्षस की प्रस्तावना और मृच्छकटिक के आमुख में सूत्रधार और नटी की बातचीत में पर्याप्त समानता मिलती है। इसी प्रकार मुद्राराक्षस के सप्तम् अंक में वध्यस्थान की ओर चण्डालों के द्वारा ले जाये जाते हुए चन्दनदास और उसके पुत्र के साथ चाण्डालों की बातचीत और मृच्छकटिक के दसवें अंक में वध्यस्थान की ओर ले जाये जाते हुए चारुदत्त और उसके पुत्र के साथ चाण्डालों की बातचीत में पर्याप्त समानता है। शूद्रक का समय कालिदास के पूर्व का माना जाता है। कीथ और कृष्णमाचार्य दोनों उन्हें कालिदास का पूर्ववर्ती मानते हैं। इससे भी विशाखदत्त की प्राचीनता ही सिद्ध होती है; क्योंकि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती नाटककार का उपर्युक्त स्थलों पर अनुकरण किया है। बाण ने अपने हर्षचरित में कालिदास की अत्यधिक प्रशंसा की है, लेकिन शूद्रक का नाम नहीं लिया। कहीं ऐसा तो नहीं कि शूद्रक की जो ख्याति विशाखदत्त के समय में थी, वह बाण के समय में नहीं रही। अतः विशाखदत्त बाण से बहुत प्राचीन और शूद्रक के

---

4. ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर (हिन्दी अनुवाद) मंगल देव, पृ० 134
5. हिस्ट्री ऑव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० 194

बाद के सिद्ध होते हैं, क्योंकि शूद्रक की कृति का उनकी नाट्यकृति पर सर्वाधिक प्रभाव है।

अन्त:साक्ष्य

विशाखदत्त का समय निश्चित करने में मुद्राराक्षस के भरत-वाक्य-श्लोक (7/18) की यह अन्तिम पंक्ति प्रमाणभूत है—

स श्रीमद्वन्धुभृत्यश्चिरमवतुमहीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।

भरतवाक्य में प्राय: समसामयिक राजा की प्रशस्ति वर्णित होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि विशाखदत्त ने भरतवाक्य में अपने आश्रयदाता राजा का उल्लेख किया होगा। लेकिन यह राजा कौन होगा, यह विचारणीय विषय है; क्योंकि मुद्राराक्षस की विभिन्न पाण्डुलिपियों में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' के स्थान पर 'पार्थिवो रन्तिवर्मा' और 'पार्थिवोऽदन्ति वर्मा' ये विभिन्न पाठ आते हैं। सर्वप्रथम हम 'रन्तिवर्मा' पाठ को लेते हैं, जिसे विद्वानों ने मान्यता नहीं दी। क्योंकि इस नाम का कोई ऐसा राजा ऐतिहासिक युग में नहीं हुआ, जिसकी वीरगाथा का वर्णन विशाखदत्त ने अपने नाटक में किया हो। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अवन्तिवर्मा का ही विकृत रूप है, जो कुछ पाण्डुलिपियों में देखा जाता है।

श्रीरंगस्वामी सरस्वती ने मालाबार में प्राप्त कतिपय पाण्डुलिपियों के आधार पर 'दन्तिवर्मा' पाठ को उपयुक्त मानते हुए उन्हें पल्लवराज दन्तिवर्मा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिनका समय 720 ई० के लगभग है।[6] लेकिन प्रो. ध्रुव ने इस कथा को इस आधार पर असंगत बताया है कि पल्लववंशी दन्तिवर्मा शैव थे, जबकि भरतवाक्य में वराह-रूपधारी भगवान् विष्णु की स्तुति है, दूसरे उन्होंने म्लेच्छोन्मूलन का कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया, जिसकी ओर संकेत भरतवाक्य में किया हुआ है।

काशीनाथ त्र्यम्बक तेलंग और प्रो. के. एच. ध्रुव ने विशाखदत्त को कन्नौज के महाराज अवन्तिवर्मा का समकालिक माना है, जिनका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध 579-600 ई० है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि प्रो. ध्रुव ने तो अपने संस्करण में 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' पाठ दिया है, लेकिन तेलंग ने 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः,' पाठ ही दिया है, ऐसा संभवतः उन्होंने ढुंढिराज की टीका के आधार पर दिया होगा, जिसे सर्वप्रथम उन्होंने मुद्राराक्षस के साथ प्रकाशित

---

6. ध्रुव—मुद्राराक्षस की भूमिका, पृ० 9

किया। ढुंढिराज ने 'चन्द्रगुप्तः' पाठ को ठीक मानकर तदनुसार भरतवाक्य-श्लोक की व्याख्या की है। अवन्तिवर्मा नाम के दो राजा ऐतिहासिक युग में हुए हैं। एक हैं कश्मीर के, जिनका उल्लेख कल्हण ने 'राजतरङ्गिणी' में किया है और जिनका शासन-काल 855-883 के बीच माना जाता है। प्रो. याकोबी ने कश्मीर के महाराज अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता माना है। इस कथन की पुष्टि में उन्होंने यह तर्क दिया है कि मुद्राराक्षस में जिस चन्द्रग्रहण का उल्लेख है, वह 2 दिसम्बर 860 ई० को हुआ था और तभी राजा के मन्त्री शूर ने इस नाटक का अभिनय कराया था।[7] लेकिन यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि विशाखदत्त कश्मीर के अवन्तिवर्मा के आश्रित कवि होते, तो वह कश्मीर के राजा पुष्कराक्ष (काश्मीरः पुष्कराक्षः- मुद्रा 1/20) को म्लेच्छ न कहते—उपलब्धवानस्मि प्रणिधिभ्यो यथा तस्य म्लेच्छराजबलस्य मध्यात्प्रधानतमाः पञ्चराजानः परया सुहृत्तया राक्षसमनुवर्तन्ते।[8] इसके अतिरिक्त उनके साथ भरतवाक्य के इस कथन की भी संगति नहीं बैठती कि म्लेच्छों के भार से पीड़ित पृथ्वी ने इन्हीं राजा की भुजाओं का आश्रय लिया—(म्लेच्छै रुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः- 7/18)। अतः विशाखदत्त कश्मीर-नरेश अवन्तिवर्मा के समकालिक अर्थात् नवम् शताब्दी के नहीं हो सकते।

तेलंग और ध्रुव ने कन्नौज के अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का समसामयिक माना है, जिनका उल्लेख भरतवाक्य में है। इनके अनुसार भरतवाक्य में जिन म्लेच्छों की चर्चा है, वे हूण हैं, जिन्हें इन्हीं अवन्तिवर्मा और स्थाणीश्वर, थानेसर के महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने पूर्णतः पराजित किया था। प्रो. ध्रुव ने मुद्राराक्षस के अपने संस्करण की भूमिका में हूण-साम्राज्य के उदय और अस्त का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार हूण-साम्राज्य, जिसकी स्थापना तोरमाण और मिहिरकुल ने की थीं, दशपुर (वर्तमान मन्दसोर) के संग्राम में 528 ई० में विनष्ट होकर छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया। इनमें पंजाब के शाकल (वर्तमान सियालकोट) और पश्चिमी राजपूताना तथा पूर्वी गुजरात के गुर्जर राज्य मुख्य थे। ये थानेसर और कन्नौज के राज्यों के लिए संकट और अशान्ति के कारण थे। कन्नौज के मौखर या मौखरिवंशीय राजा ईशानवर्मा और शर्ववर्मा ने हूणों को 543 और 552 ई० के अनेक युद्धों में पराजित किया। इन युद्धों में थानेसर के राजाओं ने अपने पड़ोसी मौखरी-शासकों की सहायता की। आगे चलकर उनकी यह राजनैतिक मैत्री वैवाहिक मैत्री में परिणत हो गई। थानेसर के महाराज

7. द संस्कृत ड्रामा, ए. बी. कीथ, (अनुवादक डा. उदयभानु सिंह) पृ० 212
8. मुद्राराक्षस, पृ० 84

आदित्यवर्द्धन ने अपनी भगिनी का विवाह कन्नौज के राजकुमार सुस्थितवर्मा के साथ कर दिया।

आक्सस नदी पर बसे हूण-साम्राज्य को जब तुर्कों ने फारस के शासक खुशरू नौशिखाँ की सहायता से 565 ई० लगभग नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, तो वे बैक्ट्रिया से टिड्डी दल की भाँति भारत के उत्तर-पश्चिम में छा गये और उनसे मिलकर शाकल के हूण थानेसर के शासकों के लिए आतंककारी सिद्ध हुए। थानेसर के महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने जो आदित्यवर्द्धन के पुत्र थे, कन्नौज के शासक अवन्तिवर्मा की सहायता से हूणों को उसी प्रकार मार भगाया जैसे सिंह हरिणों को भगाता है। यह अवन्तिवर्मा प्रभाकरवर्द्धन के जामाता ग्रहवर्मा (हर्षवर्द्धन के बहनोई) के पिता थे। हूणों को पराजित कर प्रभाकरवर्द्धन 'हूण हरिण केसरी' कहलाये।[9]

अवन्तिवर्मा और प्रभाकरवर्द्धन की हूणों पर विजय संभवत: 582 ई० में हुई होगी। इसी विजय के उपलक्ष्य में विशाखदत्त ने इस नाटक की रचना की होगी और अवन्तिवर्मा ने प्रसन्न होकर इनके पिता भास्करदत्त को सामन्त से 'महाराज' पद देकर सम्मानित किया होगा। अवन्तिवर्मा का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अत: विशाखदत्त का भी समय यही निश्चित होता है।

एक अन्य दृष्टि से विशाखदत्त का समय यही प्रतीत होता है; क्योंकि इस समय बौद्ध धर्म का पूर्णत: ह्रास नहीं हुआ था, अपितु लोगों का उसके प्रति आदरभाव था। सम्राट् हर्ष के समय में ऐसा ही था। यद्यपि उनका झुकाव संभवत: बौद्धधर्म की ओर अधिक था, लेकिन वह शिव और सूर्य की उपासना करते थे। विशाखदत्त ने भी शिव और विष्णु के प्रति अपनी भक्ति दिखाई है और सूर्य को भगवान् विशेषण से युक्त कर अपना आदरभाव व्यक्त किया है। बौद्धों के प्रति भी उन्होंने 'बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना' (मुद्रा 7/5) कहकर अपना सम्मान प्रकट किया है। इस प्रकार विशाखदत्त के समय का धार्मिक वातावरण वर्द्धनवंशीय राजाओं के समय के धार्मिक वातावरण के साम्य रखता है। अत: विशाखदत्तका समय जैसा कि ऊपर कहा गया है, छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

मुद्राराक्षस की कुछ पाण्डुलिपियों में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त:' पाठ मिलता है, जिसे तेलंग, शारदारञ्जनराय और काले आदि ने अपनाया है। प्रश्न उठता है कि यदि भरतवाक्य में वर्णित चन्द्रगुप्त विशाखदत्त के समसामयिक थे तो यह कौन चन्द्रगुप्त थे—मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्त अथवा गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय? चन्द्रगुप्त मौर्य तो नाटक का एक मुख्य पात्र है और समस्त घटना चक्र उसी पर केन्द्रित है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में विशाखदत्त ने इस नाटक को लिखा

होगा, ऐसी संभावना बहुत कम लगती है। हाँ, गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त की संभावना कुछ बढ़ जाती है; क्योंकि गुप्तवंशीय शासक विष्णु के उपासक थे और विशाखदत्त का भी अनेक श्लोकों द्वारा विष्णोपासक होना सिद्ध होता है—'किं शेषस्त भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्' (2/18)

उक्त श्लोक में यह बताया गया है कि शेषनाग के फणों पर पृथ्वी टिकी हुई है। 'प्रत्यग्रोन्मेष-जिह्मा' 3/21 इस श्लोक में शेषशायी भगवान् विष्णु की स्तुति है और भरतवाक्य 7 18 में वराहावतारधारी विष्णु का स्तवन है। इन सब प्रसंगों से विशाखदत्त की विष्णुभक्ति अथवा वैष्णव धर्म के प्रति उनका अनुराग व्यक्त होता है। 'आशैलेन्द्रात् 3/19'—इस श्लोक में जिस भारत की कल्पना की गयी है, वह चतुर्थ और पञ्चम शताब्दी की ऐतिहासिक परिस्थिति से मेल खाती है। इसके अतिरिक्त विशाखदत्त के नाम से अभिहित 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नाटक के जो अंश मिलते हैं, उसका नायक यही चन्द्रगुप्त है, इन्हीं का उदात्त चरित्र-चित्रण इस नाटक में किया गया है। प्रसिद्ध इतिहासविद् काशीप्रसाद जायसवाल, रणजीत सीताराम पण्डित, स्टेनकोनो (Stenkonow) और कृष्णमाचार्य आदि विद्वान् इस नाटक को चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय की रचना मानते हैं। भारतवाक्य में उल्लिखित म्लेच्छ हूण हो सकते हैं, जिन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भगाकर पृथ्वी का उद्धार किया। हूण गुप्तवंश की अन्तिम पीढ़ी के शासकों से संघर्षशील थे, यह तथ्य इतिहास-प्रसिद्ध है। रणजीत सीताराम पण्डित ने कहा है कि गुप्तकाल भारत का स्वर्णयुग कहा जाता है, जिसमें साहित्य, कला, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में चरम उन्नति हुई। अत: विशाखदत्त इसी युग की देन हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय, जिनका समम 375-413 ई० है, उन्हीं के समय में यह नाटक लिखा गया होगा और उन्हीं के दरबार में इसका अभिनय भी हुआ होगा। अत: मोटे तौर पर विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी ई० प्रतीत होता है।

विशाखदत्त की बहुज्ञता

किसी महाकवि की उत्कृष्ट रचना में प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों कारण-भूत रहती हैं। प्रतिभा तो कवित्व का बीजरूप संस्कारविशेष है, जो काव्य-रचना के लिए परमावश्यक है और व्युत्पत्ति लोक, शास्त्र और अन्य कवियों के काव्यों के पर्यालोचन से आती है। अच्छी काव्यकृति अथवा नाट्यकृति के लिए दोनों अपेक्षित हैं। मुद्राराक्षस का अध्ययन करने से पता चलता है कि महाकवि विशाखदत्त प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों से सम्पन्न थे। वह प्रतिभावान् तो थे ही; साथ ही उन्हे लोकानुभव भी था और अनेक शास्त्रों में वह पारंगत थे। अपने पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों का भी उन्होंने सम्यक् अध्ययन किया था। उनका अगाध शास्त्र-वैदुष्य मुद्राराक्षस में पदे-पदे परिलक्षित होता है। वह नाट्यशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, ज्योतिश्शास्त्र, छन्दःशास्त्र, न्यायवैशेषिक शास्त्र, आयुर्वेद आदि अनेक शास्त्रों में निष्णात थे। इसके अतिरिक्त पुराण, इतिहास, गुणाढ्य की बृहत्कथा, शूद्रक एवं कालिदास की नाट्यकृतियों का भी उन्होने भली-भाँति अनुशीलन किया था। नृत्यगीतादि ललितकलाओं मे वह पारंगत थे। युद्धकला के भी वह मर्मज्ञ थे। शत्रु के निकट पहुँचकर किस प्रकार व्यूह-व्यवस्था कर उसके ऊपर आक्रमण करना चाहिए, इस बात का भी उन्हें ज्ञान था। किं बहुना, उनके समान प्रतिभा-व्युत्पत्ति-सम्पन्न नाटककार शायद ही संस्कृत-जगत् में देखने को मिलेगा।

नाट्यशास्त्र

नाटक के प्रारम्भ से ही विशाखदत्त का नाट्यशास्त्रीय ज्ञान प्रकट होने लगता है। द्वितीय नान्दी-पद्य में 'त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम', यहाँ नृत्तम के प्रयोग से उनके नाट्यशास्त्र सम्बन्धी सूक्ष्म ज्ञान का परिचय होता है। धनञ्जय के अनुसार नृत्य भावाश्रित होता है और नृत्त ताल और लय के ऊपर आश्रित 'अन्यद्भावाश्रयं नृत्यं नृत्तंताललयाश्रितम्' (दशरूपक 1/9)। यह भी मधुर और

उद्धत भेद से लास्य और ताण्डव दो प्रकार का होता है। भगवान शंकर ताल-लय ऊपर नाचते हैं। अतः उनका नर्तन नृत्त कोटि का है और वह उद्धत होने से ताण्डव है। मुद्राराक्षस की कई प्रतियों में 'नृत्तम्' के स्थान पर 'नृत्यम्' पाठ भी मिलता है, लेकिन हमारे विचार से वह ग्राह्य नहीं है। काशिनाथ त्र्यम्बक तेलंग, प्रो. के. एच. ध्रुव और मोरेश्वर रामचन्द्र काले ने मुद्राराक्षस के अपने संस्करणों में 'नृत्तम्' को ही समीचीन मान कर अपनाया है। भास के नाटकों को छोड़कर अन्य नाटकों की भाँति इसका भी प्रारम्भ नान्दी से होता है; प्रारम्भ में प्रस्तावना है; नाटक का अंकों में विभाजन है; पाँचवें और छठे अंकों के प्रारम्भ में प्रवेशक के द्वारा भूत और भविष्यत् कथांशों की सूचना दी गयी है और अन्त में भरतवाक्य द्वारा नाटक की समाप्ति की गयी है। इसके अतिरिक्त नाटक के मध्य में भी स्थान-स्थान पर नाटककार के शास्त्रीय ज्ञान परिचय होता है। नाटक में नाटकीय इतिवृत्त का विस्तार पाँचों सन्धियों द्वारा किस प्रकार होता है, इसे इस श्लोक द्वारा सूचित किया गया है—

> कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयँस्तस्य विस्तारमिच्छन्
> बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
> कुर्वन् बुद्धया विमर्शं प्रसृतमपि पुनः संहरन् कार्यजातं
> कर्त्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा ।। (मुद्रा 4/3)

नाटक के चतुर्थ अंक में, जिसका यह श्लोक है, विमर्श सन्धि है। नाटककार यहाँ तक फैले हुए इतिवृत्त का आगे चलकर निर्वहण सन्धि में उपसंहार करता है। विशाखदत्त ने विमर्श सन्धि तक इतिवृत्त का अत्यधिक विस्तार किया है और उसका फलप्राप्ति के लिए कैसे उपसंहार किया जाए, यह समस्या है। यहाँ पहुँचकर विशाखदत्त-जैसा कुशल नाटककार स्वयं क्लेश का अनुभव करता है, ऐसी ही कुछ ध्वनि श्लोक के चतुर्थ पाद से निकलती है। इतिवृत्त को उपसंहृत करने में नाटककार को तीन अंक (5, 6 और 7) लिखने पड़ते हैं। अतः यहाँ पहुँचकर उन्हें क्लेश का अनुभव होना स्वाभाविक ही है।

नाटक की मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण इन पाँच सन्धियों की अभिव्यक्ति विशाखदत्त ने 'मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना' (5/3) इस श्लोक द्वारा भी की है। पुनः आगे चलकर 'तत् किं निमित्तं कुकविकृत-नाटकस्येवान्यन्मुखेऽन्यनिर्वहणे' (पृ० 265) कहकर वह इस बात की सूचना देते हैं कि अकुशल नाटककार के द्वारा विन्यस्त इतिवृत्त में मुखसन्धि में कुछ और होता है और निर्वहण सन्धि में कुछ और। अर्थात् दोनों में कोई

सामञ्जस्य नहीं रहता । इन सब सन्दर्भों द्वारा विशाखदत्त अपने नाट्य-शास्त्रीय ज्ञान का परिचय पाठकों को करा देते हैं । इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह नाट्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं और उसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने इस नाटक की संरचना की है ।

राजनीतिशास्त्र

विशाखदत्त कौटिलीय अर्थशास्त्र के महान् ज्ञाता थे; जिसका प्रभाव इस नाटक में स्थान-स्थान पर दिखायी पड़ता है । इसके अतिरिक्त कामन्दकीय नीतिसार का उन्होंने सम्यक् अध्ययन किया था । प्रो. हर्मन याकोबी इसका समय तृतीय शताब्दी ई० में मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान् चतुर्थ शताब्दी । कामन्दक बिष्णुगुप्त चाणक्य को गुरुवत् पूज्य मानते हैं और अपनी अपार श्रद्धा इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

वंशे विशालवंशानामृषीणामिव भूयसाम् ।
अप्रतिग्राहकाणां यो बभूव भुवि विश्रुतः ।।

जातवेदा इवार्चिस्मान् वेदान् वेदविदां वरः ।
योऽधीतवान् सुचतुरश्चतुररोऽप्येक वेदवत् ।।

यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः ।
पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वा नन्दपर्वतः ।।

एकाकी मन्त्रशक्त्या यः शक्त्या शक्तिधरोपमः ।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम् ।।

नीतिशास्त्रामृतं श्रीमानर्थशास्त्रमहोदधेः ।
य उद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे ।। (नीतिसार 1/2-6)

अर्थात् विशालवंश वाले, ऋषियों के समान प्रतिग्रह न करनेवाले पूर्वजों के उन्नत वंश में जिसने जन्म लेकर पृथ्वी में ख्याति को अर्जित किया, जो ज्योतिष्मान् अग्नि के समान है, वेदज्ञों में श्रेष्ठ जिसने चारों वेदों का एक वेदवत् अध्ययन किया, वज्र के समान जाज्वल्यमान तेजवाले जिसके अभिचारकर्म रूपी वज्र से सुन्दर पर्व (अवयव या चरित) वाला नन्दरूपी पर्वत मूलतः धराशायी हो गया, शक्तिशाली कार्तिकेय के समान जिसने अकेले ही अपनी मंत्रशक्ति से मनुष्यों में चन्द्र चन्द्रगुप्त

को पृथ्वी का राज्य प्रदान किया और जिस श्रीमान ने अर्थ-शास्त्ररूपी महोदधि को मथकर नीतिशास्त्ररूपी अमृत को निकाला, उस परम बुद्धिमान चाणक्य को प्रणाम है।

इन दोनों राजनीतिपरक शास्त्रों का मुद्राराक्षस पर कितना प्रभाव है, यह पृथक् रूप में विचार करने का विषय है। विशाखदत्त ने तीक्ष्णरसद (पृ० 122) प्रधानप्रकृति (पृ० 69) तन्त्रयुक्ति मण्डल, मन्त्र (2/1) परकृत्योपजाप (पृ० 113) तीक्ष्ण-मृदु (3/5) अन्त: कोप-वाह्यकोप (पृ० 175-76) आभिगामिक गुण (पृ० 193), व्यसन (पृ० 204) षड्गुण (6/4) द्रव्य-अद्रव्य (7/14) आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों को अर्थशास्त्र से लिया है, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुद्राराक्षस पर कौटिलीय अर्थशास्त्र का सर्वाधिक प्रभाव है। इसके अतिरिक्त प्रथक अंक (पृ० 69) में विशाखदत्त ने चाणक्य के सहाध्यायी मित्र इन्दु शर्मा नामक ब्राह्मण को औशनसी दण्डनीति में पारंगत बताया है, इससे यह ध्वनित होता है कि वह शुक्राचार्य की दण्डनीति में भी परम प्रवीण थे।

ज्योतिश्शास्त्र

अन्य शास्त्रों की भांति ज्योतिश्शास्त्र में भी विशाखदत्त निष्णात थे। इस बात की सूचना उन्होंने सर्वप्रथम सूत्रधार के मुख से 'आर्ये, कृतश्रमोऽस्मि चतुःषष्ट्यगे ज्योतिश्शास्त्रे' और आगे चलकर चाणक्य की' अस्ति चास्माकं सहाध्यायि मित्र-मिन्दु शर्मा नाम ब्राह्मणः। स चौशनस्यां दण्डनीत्यां चतुःषष्टयगे ज्योतिश्शास्त्रे च परं प्रावीण्यमुपगतः' (पृ० 69) इस उक्ति द्वारा दी है। चन्द्रग्रहण की पूरी संभावना होते हुए भी बुध का योग कैसे उसे रोक देता है, इसकी उन्हें जानकारी थी। टीकाकार ढुंढिराज ने इस प्रसंग में व्यास संहिता में आये गर्ग के वचनों को इस प्रकार उद्धृत किया है—

> ग्रहपञ्चकसंयोगं दृष्टवा न ग्रहणं वदेत्।
> यदि न स्याद्बुधस्तत्र युद्धं दृष्टवा ग्रहं वदेत्॥

वह ज्योतिश्शास्त्र के 64 अंगों में पारंगत थे, इसकी ओर संकेत उन्होंने उपर्युक्त सन्दर्भों द्वारा करा दिया है। पुनः द्वितीय अंक में ज्योतिषी के लिए सांवत्सरिक शब्द का प्रयोग किया है—'सांवत्सरिकादेशादर्धरात्रसमये चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशो भविष्यति।' विषाखदत्त ज्योतिषसम्बन्धी अपने विशेष ज्ञान का परिचय चतुर्थ अंक के अन्त में राक्षस और क्षपणक संवाद द्वारा कराते हैं।

इन संवादों में ज्योतिष के गूढ़ रहस्यों की चर्चा है, जिन्हें वही व्यक्ति भली-

भाँति समझ सकता है, जिसको ज्योतिष का सम्यक् ज्ञान हो। उस समय कुछ लोग तिथि की अनुकूलता को महत्त्व देते थे और कुछ लोग नक्षत्र की अनुकूलता को; लेकिन विशाखदत्त संभवत: लग्न की अनुकूलता को सर्वोपरि मानते थे, तभी उन्होंने तिथि की अपेक्षा लग्न को चौंसठ गुणा बढ़ाकर बताया है। इस प्रकार का वर्णन उनके ज्योतिष सम्बन्धी गम्भीर ज्ञान का परिचायक है। उन्होंने इस शास्त्र का अध्ययन करने में बड़ा श्रम किया था, यह बात उनके द्वारा प्रयुक्त 'कृतश्रम' शब्द (कृतश्रमोऽस्मि चतु:षष्टयङ्गे ज्योतिश्शास्त्रे) से प्रकट होती है।

छन्द:शास्त्र

मुद्राराक्षस का छन्द की दृष्टि से अध्ययन करने से पता चलता है कि विशाखदत्त छन्दशास्त्र के भी ज्ञाता थे। प्रो. ध्रुव ने मुद्राराक्षस के अपने संस्करण के परिशिष्ट 'अ' में उन सभी छन्दों की स्थान निर्देशपूर्वक सूची दी है, जो इस नाटक में प्रयुक्त हुए हैं। छन्द हैं—अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, रुचिरा, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, हरिणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, सुवदना, स्रग्धरा, माल्यभारिणी, पुष्पिताग्रा तथा आर्या। इन सभी छन्दों में शार्दूलविक्रीडित का 37 बार, स्रग्धरा, का 24 बार और आर्या का 27 बार प्रयोग हुआ है। सर्वाधिक प्रयुक्त छन्द यही हैं। इससे विशाखदत्त की इन छन्दों के प्रति विशेष रुचि का आभास होता है। इनमें भी संभवत: स्रग्धरा विशाखदत्त का अति प्रिय छन्द है, जो शार्दूलविक्रीड़ित की भाँति सभी अंकों में आया है। इस नाटक के गम्भीर राजनैतिक कथानक के अनुरूप ही इस छन्द का प्रयोग हुआ है। नाटककार इसका आदि, मध्य और अन्त में प्रयोग करना भूलते नहीं। प्रारम्भिक नान्दी पद्यों में, मध्य में वैतालिकों द्वारा शरद्वर्णन में तथा अन्त में भरतवाक्य में इसी छन्द का प्रयोग हुआ है। स्रग्धरा में एक अक्षर की न्यूनता कर देने से सुवदना छन्द बन जाता है। स्रग्धरा के प्रत्येक पाद में 21 अक्षर होते हैं तो सुवदना में 20 अक्षर। चतुर्थ अंक में मलयकेतु जहाँ शोण को पारकर ससैन्य पाटलिपुत्र में प्रवेश करने की बात करता है, वहाँ उसकी त्वरा को स्रग्धरा के स्थान पर सुवदना को अपनाकर बड़ी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया गया है। सम्पूर्ण नाटक में इसी स्थान पर इस छन्द का प्रयोग हुआ है। जिस श्लोक में इसका प्रयोग हुआ है, वह इस प्रकार है—

उत्तुङ्गास्तुङ्ग कूलं स्रुतमदसलिलाः प्रस्यन्दिसलिलं
श्यामाः श्यामोपकण्ठद्रुममतिमुखराः कल्लोलमुखरम्।
स्रोतः खातावसीदत्तटमुरुदशनै रुत्सादिततटाः
शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयः पास्यन्ति शतशः ॥ (4/16)

यहाँ विशाखदत्त ने इस छन्द का प्रयोग साभिप्राय किया है। किसी कार्य को बिना सोचे-विचारे शीघ्रता में करने का जो मलयकेतु का स्वभाव है, उसकी इसके प्रयोग द्वारा व्यञ्जना की गयी है। इससे स्पष्ट होता है कि विशाखदत्त ने रस-भावानुकूल छंदों की योजना की है, जिसकी ओर संकेत क्षेमेन्द्र ने इस रूप में किया है—

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित् ॥ (सुवृत्ततिलक 3/7)

न्याय-वैशेषिक शास्त्र

मुद्राराक्षस के पञ्चम अंक में आये एक श्लोक से विशाखदत्त का न्याय-वैशेषिक दर्शन में प्रावीण्य प्रकट होता है। वह श्लोक इस प्रकार है—

साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत्सपक्षे स्थितिं
व्यावृत्तं च विपक्षतो भवति यत्तत्साधनं सिद्धये।
यत्साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धं च यत्
तस्यांङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात्स्वामिनो निग्रहः ॥ (5/10)

न्यायदर्शन में अनुमानप्रमाण के प्रसंग में अन्वयव्यतिरेकी हेतु को पञ्चरूपोपन कहा गया है। पञ्चरूप हैं—पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति, अबाधित-विषयत्व और असम्प्रतिपक्षत्व। इन पञ्चरूपों से युक्त हेतु सद् हेतु कहलाता है और वह अपने साध्य को सिद्ध करने में समर्थ होता है। नैयायिक हेतु की पञ्च-रूपता को मानते हैं और वैशेषिक त्रिरूपता को। न्याय में पञ्चरूपता के प्रवर्तक उद्योतकर हुए हैं और वैशेषिक दर्शन के प्रशस्तपादभाष्य में हेतु की त्रिरूपता को स्वीकार किया गया है। ये तीन रूप हैं—पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्या-वृत्ति, जिनकी ओर इस श्लोक में संकेत किया गया हैं। तात्पर्य यह है कि धूमवत्त्व हेतु की पक्ष-पर्वत और सपक्ष-महानस (रसोई घर) में सत्ता है, लेकिन विपक्ष-महाह्रद (तालाब) में वह नहीं है। ऐसे हेतु को अपनाने से साध्यवस्तु की सिद्धि

होती है; लेकिन इसके विपरीत हेतु को अपनाने से कभी भी साध्यवस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती। जो साधन ही साध्य हो, पक्ष और विपक्ष में समान हो और यहाँ तक की अपने पक्ष ही में विरुद्ध पड़ता हो, ऐसे असद् हेतु को अपनाने से साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। राक्षस द्वारा कहे गये उपर्युक्त श्लोक का आशय यह है कि राक्षस को ऐसा कुछ आभास है कि उसकी सेना में चाणक्य के भद्रभटादि लोग आकर मिल गये हैं। सेना ही विजय का साधन होती है और यदि वही विशुद्ध न हो तो शत्रु पर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है। अतः राक्षस को यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी विजय संदिग्ध है। इस प्रकार इस श्लोक के द्वारा विशाखदत्त का न्याय-वैशेषिक दर्शन का ज्ञान सूचित होता है।

आयुर्वेद अथवा चिकित्सा शास्त्र

मुद्राराक्षस के अध्ययन से विशाखदत्त के आयुर्वेदविषयक ज्ञान का भी पता चलता है। नाटक के द्वितीय अंक में अभयदत्त नामक वैद्य का उल्लेख है (अथ तत्रत्येन भिषजाअभयदत्तेन किमनुष्ठितम्—पृ० 129)। वैद्य लोग किसी प्रक्रिया से ऐसी औषधि तैयार करते थे, जो विषमय होती थी और जिसके पीने से मनुष्य की सद्यः मृत्यु हो जाती थी। इस वैद्य ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए इसी प्रकार की औषधि बनायी थी, लेकिन स्वर्णपात्र में डालने से उसका रंग बदल गया, जिससे चाणक्य को सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने उसने उसी औषधि को वैद्य अभयदत्त को पिला दिया। फलतः उसकी मृत्यु हो गयी।

प्राचीनकाल में जन्म से ही स्वल्प मात्रा में शनैः-शनै विष देकर विष-कन्याओं को तैयार किया जाता था, जिनके सम्पर्क में आने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती थी। मुद्राराक्षस में इसी विषकन्या का उल्लेख है, जिसके द्वारा चाणक्य ने पर्वतक का वध कराया था, यद्यपि उसे राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने लिए भेजा था। राक्षस अपने प्रयोग की विफलता का इस प्रकार वर्णन करता है—

> कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया
> दैवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धहृत्।
> ये शस्त्रेषु रसेषु च प्रणिहिचास्तैरेव ते धार्तिता
> मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्नीतयः॥ (2/16)

यहाँ विष के लिए 'रस' शब्द का प्रयोग हुआ है। सुश्रुत (1/5) में कहा गया है कि विषकन्या के उपयोग से मनुष्य क्षण भर में अपने प्राणों को छोड़ देता था—

विषकन्योपयोगाद्वा क्षणाज्जह्यादसून् नरः। 'अष्टांग-संग्रह-सूत्रस्थानम्' में ऐसा उल्लेख है कि जन्म से ही विष देकर जिस कन्या को विषमयी किया जाता था, उसके स्पर्श एवं उच्छ्वास आदि से मनुष्य की मृत्यु हो जाती थी। उसके परीक्षण का उपाय भी वहाँ बताया है कि उसके मस्तक के स्पर्श से पुष्प और पल्लव मलिन हो जाते हैं; शय्या में खटमल और वस्त्रों में जूँ मर जाती हैं। अतः उस विषकन्या से मनुष्य को सदैव दूर रहना चाहिए—

आजन्म विषसंयोगात् कन्या विषमयी कृता।
स्पर्शोच्छ्वासादिभिर्हन्ति तस्यास्त्वेतत् परीक्षणम्॥
तन्मस्तकस्य संस्पर्शान्म्लायेते पुष्पपल्लवौ।
शय्यायां मत्कुणैर्वस्त्रे यूकाभिः स्नानवारिणा॥
जन्तुभिर्म्रियते ज्ञात्वा तामेवं दूरतस्त्यजेत्।[1]

सर्प के विष का निवारण करनेवाली दिव्य ओषधियाँ हिमालय पर मिलती हैं (हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः 1/22), इसका भी विशाखदत्त को ज्ञान था। उस समय कुछ ऐसी भी महाव्याधियाँ होती थीं, जिसका कोई इलाज नहीं था (किमौषध-पथातिगैरुपहतो महाव्याधिभिः—6/16)। घाव होने पर मलहम-पट्टी की जाती है, इस चिकित्सा से भी वह परिचित थे। इसका उल्लेख इस श्लोक में हुआ है—

स्वनिर्मोकच्छेदैः परिचितपरिक्लेशकृपया।
श्वसन्तः शाखानां व्रणमिव निबध्नन्ति फणिनः॥ (6/12)

इस प्रकार यह स्पष्ट है विशाखदत्त आयुर्वेद अथवा चिकित्सा शास्त्र आदि के ज्ञाता थे।

पुराणेतिहास एवं अन्य नाट्यग्रन्थ

अन्य शास्त्रों के साथ विशाखदत्त ने पुराण महाभारत, शूद्रक एव कालिदास के नाटकों का भी सम्यक् अध्ययन किया था, यह मुद्राराक्षस के पढ़ने से ज्ञात होता है। लक्ष्मी समुद्र-मंथन करने पर समुद्र से उत्पन्न होने के कारण अकुलीन हैं (अपि च अनभिजाते)। शेषनाग अपने फणों पर पृथ्वी को धारण

1. ये श्लोक प्रो. ध्रुव के मुद्राराक्षस के संस्करण के नोट्स पृ० 110 पर उद्धृत हैं।

करते हैं (किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषिक्ष्मां न क्षिपत्येष यत्—2/18); भगवान् विष्णु चातुर्मास्य में क्षीरसागर में शेष-शय्या पर शयन करते हैं (नागाङ्कं मोक्तुमिच्छोः शयनमुरु फणाचक्रवालोपधानम्—3/21) तथा प्रलयकाल में जल से पृथ्वी के डूब जाने पर भगवान् वराहावतार धारण कर उसका उद्धारकरते हैं (यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री - 7/18) इत्यानि वर्णन हमारे नाटककार के पौराणिक ज्ञान के परिचायक हैं। इसी प्रकार राजा शिबि ने किस प्रकार अग्निरूपधारी कपोत की रक्षा में इन्द्र का रूप धारण करनेवाले श्येन को अपना मांस काट-काट कर अर्पित कर शरणागतवत्सलता दिखायी, महाभारत (वनपर्व, अध्याय 131) के इस आख्यान से भी वह परिचित थे। इस कथा की ओर संकेत उन्होंने राक्षस की इस उक्ति द्वारा किया है, जिसमें वह शरणागत की रक्षा करने में चन्दनदास की तुलना राज शिबि से करते हैं—

> शिबेरिव समुद्भूतं शरणागतरक्षया।
> निचीयते त्वया साधो यशोऽपि सुहृदा बिना।। (6/18)

इसी कथा का पुनः उल्लेख वह सप्तम अंक, श्लोक पाँच में करते हैं—'नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः।' कर्ण ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त शक्ति को किस प्रकार अर्जुन को मारने के लिए रख छोड़ा था और कृष्ण की नीति-चातुरी से कैसे हिडिम्बा राक्षसी का पुत्र घटोत्कच मारा गया, महाभारत (द्रोणपर्व, अध्याय 179) के इस आख्यान की ओर संकेत नाटककार ने इस श्लोक में किया है—

> कर्णेनेव विषाङ्गनैकपुरुषव्यापादिनी रक्षिता
> हन्तुं शक्तिरिवार्जुनं बलवती या चन्द्रगुप्तं मया।
> सा विष्णोरिव विष्णुगुप्तहतकस्यात्यन्तिकश्रेयसे
> हैडिम्बेयमिवेत्य पर्वतनृपं तद्वध्यमेवावधीत्।। (2/15)

महाभारत के अन्त में क्रूर नियति द्वारा किस प्रकार वृष्णिवंश का विनाश हुआ, मौसलपर्व की इस घटना से भी विशाखदत्त परिचित थे। इसका उल्लेख उन्होंने इस श्लोकार्ध द्वारा किया है—

> वृष्णीनामिव नीति विक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां
> नन्दानां विपुले कुलेऽकरुणया नीते नियत्याक्षयम्।।(2/4)

इस प्रकार विशाखदत्त ने अपने महाभारत-ज्ञान को यत्र-तत्र स्फुट श्लोकों

द्वारा व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त गुणाढ्य की बृहत्कथा का भी उन्होंने अध्ययन किया था, जिसका इस नाटक पर पर्याप्त प्रभाव है । यही नहीं, कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् से उन्होंने अंगुलिमुद्रा का वृत्तान्त लिया होगा, ऐसा प्रतीत होता है। शूद्रक के मृच्छकटिक से तो वह प्रभावित थे ही; क्योंकि सातवें अंक में जो बध्यस्थान का दृश्य है, उस पर मृच्छकटिक के बध्यस्थान (अंक 10) के दृश्य की निश्चित रूप से छाप है।

इस प्रकार मुद्राराक्षस के अध्ययन से विशाखदत्त के विविध शास्त्रों के गम्भीर ज्ञान का परिचय होता है। उनके समान शास्त्र-वैदुष्य से युक्त कवि अथवा नाटककार बहुत कम देखने को मिलेंगे। अत: नाटक में चाणक्य के लिए राक्षस के द्वारा की गयी प्रशस्ति को विशाखदत्त के लिए भी प्रयुक्त कर सकते हैं—

आकर: सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागर: ॥ (7/7)

मुद्राराक्षस : इतिवृत्त और स्रोत

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र (19/1) में 'इतिवृत्तंतु नाट्यस्य शरीरं परि-कीर्तितम्' ऐसा कहकर इतिवृत्त को नाट्य का शरीर बताया है। इसी नाट्य शरीर में रसरूपी आत्मा की प्रतिष्ठा होती है। जैसे रमणी-शरीर सुन्दर होने पर लोगों के चित्त को आह्लादित कर देता है, उसी प्रकार इतिवृत्त के सुन्दर होने से लोग उसके प्रति स्वयमेव आकृष्ट हो जाते हैं। अभिज्ञान-शाकुन्तल की लोकप्रियता का कारण मेरे विचार से रसादि की स्थिति की अपेक्षा इतिवृत्त का सुन्दर और चित्ताकर्षक होना है। मुद्राराक्षस का कथानक उसके इतिवृत्त के कारण ही इतना लोकप्रिय और ग्राह्य हुआ है। बृहत्कथा और पुराणों से मूल कथानक को लेकर विशाखदत्त ने उसे इतने सुन्दर ढंग से सजाया-सँवारा है कि लोग उसके प्रति खिचते चले जाते हैं। उसकी सुन्दर योजना विशाखदत्त के नाट्य-रचना-कौशल का परिचय करा देती है; तभी ढुंढिराज ने उन्हें 'अद्भुतरसविलसत्संविधानप्रवीण:' कहा है। वह इतिवृत्त कैसा है, उसे संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

नाटक के प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि चाणक्य ने नन्दों का विनाश कर चन्द्रगुप्त को पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बिठा दिया है; लेकिन नन्दों का योग्य और स्वामिभक्त मन्त्री उसे सिंहासनच्युत करने में सतत् प्रयत्नशील है। चाणक्य सोचता है कि जब तक राक्षस को वश में नहीं किया जायेगा, तब तक चन्द्रगुप्त सिंहासन पर स्थिरतापूर्वक नहीं बैठ सकता। राक्षस भी आसानी से वश में आने वाला नहीं; क्योंकि नन्द-वंश के प्रति उसकी निरतिशय भक्ति है। जब तक नन्द वंश का कोई भी व्यक्ति जीवित रहेगा, वह चन्द्रगुप्त प्रदत्त सचिव पद कभी स्वीकार नहीं करेगा। इसी दृष्टि से नन्दवंश के अन्तिम शासक सर्वार्थसिद्धि को, जो पाटलिपुत्र पर चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर की सेनाओं द्वारा घेरा पड़ने पर प्रजा के ऊपर पड़ने वाले अत्याचारों को नहीं देख सका और तपोवन भाग गया था, चाणक्य ने मरवा दिया। लेकिन राक्षस इससे भी विचलित नहीं हुआ

और उसने पर्वतक-पुत्र मलयकेतु को राजा बनाने का निश्चय कर अपने संघर्ष को प्रगतिशील रखा। यह मलयकेतु चाणक्य का पक्ष छोड़कर राक्षस के पास चला आया था; क्योंकि चाणक्य के एक विश्वस्त व्यक्ति भागुरायण से उसे यह पता चला था कि उसके पिता पर्वतक को चाणक्य ने ही विषकन्या के प्रयोग से मरवाया है और यदि वह वहाँ पाटलिपुत्र में रहेगा, तो चाणक्य उसे भी किसी-न-किसी गुप्त उपाय से मरवा देगा। यद्यपि मलयकेतु के राक्षस से मिल जाने पर राक्षस की शक्ति द्विगुणित हो गयी फिर भी चाणक्य को अपने बुद्धिबल पर पूरा विश्वास था कि वह सब कुछ ठीक कर लेगा और एक-न-एक दिन राक्षस का निग्रह अवश्य करेगा। चाणक्य राक्षस को मरवाना भी नहीं चाहता था, अपितु जीवित रख कर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना चाहता था, ताकि वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनना स्वीकार कर ले। इसी के लिए चाणक्य अपनी कूटनीति का सहारा लेता है और अन्ततोगत्वा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है।

चन्द्रगुप्त और पर्वतक की सम्मिलित सेनाओं ने पाटलिपुत्र पर विजय प्राप्त की थी; अत: नन्दों के साम्राज्य के अधिपति दोनों व्यक्ति होने चाहिए। चाणक्य ऐसा नहीं चाहता था; क्योंकि ऐसा होने से राज्य में द्वैराज्य व्यवस्था होगी और उसका आगे चलकर यह दुष्परिणाम होगा, कि दोनों राज्य आपसी संघर्ष के कारण नष्ट हो जायेंगे। चाणक्य ने इसीलिए इस व्यवस्था की निन्दा अर्थशास्त्र (8/2) में इस प्रकार की है—

द्वैवराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्परसंघर्षेणवा विनश्यति।

चाणक्य चन्द्रगुप्त को एकच्छत्र सम्राट् के रूप मे देखना चाहता था, तभी उसने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए राक्षस द्वारा भेजी हुई विषकन्या को क्षपणक जीवसिद्धि के माध्यम से पर्वतक के पास भिजवा दिया था। पर्वतक विलासी राजा रहा होगा; अत: उसके सम्पर्क में आने से उसकी मृत्यु हो गयी। अब चाणक्य ने दो कार्य किये। पहला कार्य उसने यह किया कि राज्य में उसने यह जनापवाद फैलाया कि राक्षस ने हमारे अत्यन्त उपकारक मित्र पर्वतेश्वर को विषकन्या के प्रयोग से मरवा दिया है, ताकि राक्षस जो बड़ा ही प्रजाप्रिय था, जनता मे निन्दा का भाजन बन जाय और दूसरा कार्य उसने यह किया कि भागुरायण के द्वारा डरवाकर मलयकेतु को भगा दिया, जिसने जाकर राक्षस का आश्रय ग्रहण किया। राक्षस चाणक्य के इस क्रिया-कलाप से भलीभाँति परिचित था। तभी वह कहता है—

साधु कौटिल्य, साधु।
परिहृतमयश: पातितमस्मासु च घातितोऽर्धराज्यहर:।
एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव॥ (2/19)

मलयकेतु राक्षस के पास अकेले नहीं गया था, अपितु उसके साथ कुलूत-देशाधिपति चित्रवर्मा, मलयनरपति सिंहनाद, कश्मीरदेशाधिराज पुष्कराक्ष, सिन्धुदेश का राजा सिन्धुषेण और पारसीकाधिराज मेघ—ये पाँच राजा भी अपनी विशाल सेनाओं के साथ गये थे। चाणक्य ने एक कपटलेख लिखवाकर अपने गुप्तचर सिद्धार्थक द्वारा उसे शत्रुपक्ष में पहुँचाकर मलयकेतु का इन राजाओं के प्रति अविश्वास पैदा करवा दिया। फलत: अपनी मूर्खतावश वह पाँचों राजाओं को मरवा देता है; जिससे उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। कपटलेख के कारण राक्षस और मलयकेतु में भी फूट पड़ जाती है। वह राक्षस को त्याग देता है; लेकिन अन्त में चाणक्य के लोगों द्वारा पकड़ा जाता है।

चाणक्य यह जानने के लिए कि पाटलिपुत्र में कौन लोग नन्दानुरक्त हैं, निपुणक नामक अपने गुप्तचर को भेजता है। वह हाथ में यमपट लिए पाटलिपुत्र की सड़कों पर घूमता है और यह गीत गाता है—

प्रणमत यमस्य चरणं किं कार्यं दैवतैरन्यैः।
एष खल्वन्यभक्तानां हरति जीवं परिस्फुरन्तम्॥

पुरुषस्य जीवितव्यं विषमाद्भवति भक्तिगृहीतात्।
मारयति सर्वलोकं स यस्तेन यमेन जीवामः॥

अर्थात् यम के चरणों में प्रणाम करो; अन्य देवों की उपासना करने से क्या लाभ; क्योंकि अन्य देवों की उपासना करने वाले लोगों के भी फड़फड़ाते प्राणों का यम हरण कर लेता है। पुरुष का जीवन तभी चल सकता है, जब उसने अपनी भक्ति से उस क्रूर यम को सन्तुष्ट कर लिया हो। जो सभी को मारता है, उसी की कृपा से हमारा जीवन चलता है।

इस गाथा को गाते हुए वह मणिकार श्रेष्ठी चन्दनदास के घर के निकट पहुँचता है। उसकी आवाज़ सुनकर एक पाँच वर्ष का बालक बाल-सुलभ-कुतूहलवश घर से निकलने लगता है। तभी घर के अन्दर 'हाय निकल गया, हाय निकल गया'—इस प्रकार का कोलाहल होने लगता है। फिर उसी के पीछे एक स्त्री आती है और दरवाज़े के अन्दर से ही उसे पकड़ कर ले जाती है। उस बालक को झकझोर कर पकड़ने में उसकी अँगुली से एक अँगूठी गिर जाती है, जो पुरुष की अंगुलि-मुद्रा होने से उसकी अँगुली में ढीली थी। वह स्त्री सम्भ्रम में यह नहीं जान पाती कि उसकी अँगूठी गिर गयी है। अँगूठी देहली के बाहर लुढ़कती हुई आती है और उस पर अमात्य राक्षस का नाम अंकित देख, निपुणक उसे उठा लेता है और चाणक्य के पास पहुँचा देता है। इस मुद्राधिगम वृत्तान्त से चाणक्य समझ जाता

है कि पाटलिपुत्र से भाग गये राक्षस ने अपनी पत्नी आदि को अपने मित्र चन्दनदास के घर में रख छोड़ा है। मुद्रा मिलते ही सारी योजना चाणक्य के मस्तिष्क मे घूम जाती है और अन्त में इसी मुद्रा द्वारा उसकी कूटनीतिवश राक्षस पकड़ा जाता है। राक्षस की अंगुलिमुद्रा ही उसके निग्रह में कारणभूत होती है, तभी इस नाटक का नाम मुद्राराक्षस रखा गया है, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी, 'मुद्रया अंगुलिमुद्रया गृहीतं राक्षसमधिकृत्य कृतोग्रन्थ इति मुद्राराक्षसम्।' यह भाग्य की विडम्बना है कि नन्दों का नीतिनिपुण महामात्य स्वयं अपनी अंगुलिमुद्रा द्वारा पकड़ा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि विशाखदत्त ने अपने नाटक का नाम कितना औचित्यपूर्ण रखा है। हो सकता है नाटककार को इस नामकरण की प्रेरणा कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से मिली हो। जो भी कुछ हो, इस मुद्रा का मुद्राराक्षस में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

चाणक्य अपने विश्वस्त गुप्तचर सिद्धार्थक द्वारा कायस्थ शकटदास से उक्त कपटलेख लिखवाता है, जो राक्षस का व्यक्ति है, ताकि आगे चलकर यह सिद्ध किया जा सके कि राक्षस ने अपने मित्र शकटदास से इसे लिखाकर चन्द्रगुप्त के पास किसी बहुत बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए भेजा है और मलयकेतु उसे सन्देह की दृष्टि से देखे। इसी को कार्यान्वित करने के लिए वह अमात्य राक्षस की अँगूठी से उसे मुद्रित करवाता है और अंगुलिमुद्रा के साथ उसे सिद्धार्थक को दे देता है तथा आगे उसे क्या करना है, इसके विषय में उसे आदेश देता है। वह कहता है कि सर्वप्रथम तुम वध्यस्थान जाओ; वहाँ राजद्रोह के अपराध में पकड़े गये शकटदास को वध्यस्थान की ओर ले जाते हुए चाण्डालों को तुम दाहिनी आँख को संकुचित कर संकेत देना और जब वह बनावटी भय से इधर-उधर भागने लगें, तो शकटदास को वहाँ से ले जाकर राक्षस के पास पहुँचा देना। अपने मित्र के प्राण बचाने के उपलक्ष्य में राक्षस तुम्हें पारितोषिक देगा, उसे स्वीकार करना ओर कुछ दिन राक्षस का विश्वासपात्र बनने के लिए वहीं रहना तथा जब शत्रु की सेना पाटलिपुत्र के निकट पहुँच जाये, तब हमारे इस महान् प्रयोजन का अनुष्ठान करना। सिद्धार्थक चाणक्य के आदेश का यथोपदिष्ट रूप में पालन करता है।

इधर चाणक्य चन्दनदास को बुलाता है और यह बताने के लिए बाध्य करता है कि राक्षस की पत्नी और पुत्र उसके घर में छिपे हुए हैं। चन्दनदास के न बताने पर वह उसे आतंकित कराता है। उसको डराने के लिए वह जीवसिद्धि क्षपणक को राजद्रोह के अपराध में पाटलिपुत्र से अपमान के साथ निकलवा देता है और शकटदास को शूली पर चढ़ाने का आदेश देता है। यह सब चाणक्य योजनाबद्धरूप में करता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि जीवसिद्धि चाणक्य का सहपाठी मित्र है, जो नन्दों के समय में ही पाटलिपुत्र में आकर अमात्य राक्षस का बहुत प्रिय और विश्वासभाजन बन गया था। पाटलिपुत्र से निष्कासित होने पर वह राक्षस के

यहाँ चला जाता है और इस प्रकार चाणक्य अपने एक परमप्रिय आत्मीयजन को राक्षस के पीछे लगा देता है, ताकि उसकी गतिविधि का उसको पता चलता रहे।

देशद्रोहियों के प्रति इस उग्र दण्ड को देखकर भी जब चन्दनदास विचलित नहीं होता और राक्षस के पुत्र-कलत्र को चाणक्य को नहीं समर्पित करता, तो उसे इस अपराध के फलस्वरूप कारागार में पत्नी और पुत्र के साथ डाल दिया जाता है और उसके लिए चन्द्रगुप्त से प्राणहर दण्ड का विधान करवाया जाता है। अब चाणक्य को विश्वास हो चला है कि राक्षस अवश्य पकड़ा जायेगा; क्योंकि जिस प्रकार चन्दनदास ने राक्षस के पुत्र-कलत्र की रक्षा करने में अपने प्राणों का मोह नहीं किया, उसी प्रकार राक्षस भी इनकी जीवन-रक्षा करने में अपने जीवन का मोह छोड़कर पाटलिपुत्र आयेगा और पकड़ा जायेगा।

इसी बीच चाणक्य की पूर्वनिर्धारित नीति के अनुसार सिद्धार्थक शकटदास को वध्यस्थान से ले जाकर राक्षस के यहाँ पहुँचा देता है। उन्हें पकड़वाने के लिए चाणक्य भागुरायण को आदेश दिलवाता है तो पता चलता है कि भागुरायण भी भाग गया है। पुनः भागुरायण को पकड़ने के लिए भद्रभट, पुरुषदत्त हिंगरात, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्मा को आदेश दिलवाता है तो ज्ञात होता है कि ये लोग तो प्रातःकाल ही भाग गये थे। इस प्रकार चाणक्य बड़ी ही चतुरता से अपने विश्वसनीय लोगों को शत्रुपक्ष में भिजवा देता है और ये सब अन्त में चाणक्य के कार्य को सिद्ध करते हैं।

राक्षस के पाटलिपुत्र से भाग जाने पर उसके लोगों ने वहाँ क्या-क्या किया, इसकी जानकारी देने के लिए विराधगुप्त नाम का गुप्तचर उसके पास आता है, जो सपेरे के वेश में पाटलिपुत्र में भ्रमण करता था। वह राक्षस से पाटलिपुत्र का सारा वृत्तान्त निवेदित करता है। वह बताता है कि पाटलिपुत्र पर चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर की सम्मिलित सेनाओं द्वारा बहुत दिनों तक घेरा पड़ा रहा और पुरवासियों पर भीषण अत्याचार होता रहा। नन्दवंश का अंतिम प्ररोह राजा सर्वार्थसिद्धि प्रजा के ऊपर पड़नेवाले इस अत्याचार से उद्विग्न होकर सुरंग मार्ग से तपोवन चला गया, लेकिन चाणक्य ने उसे वहाँ भी मरवा दिया, ताकि नन्दवंश का कोई व्यक्ति जीवित न रहे, नहीं तो उसको राजा मानकर राक्षस संघर्ष करता रहेगा। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जिस विषकन्या को भेजा था, चाणक्य की कूटनीति से उसी द्वारा पर्वतक मारा गया। चन्द्रगुप्त के अर्धरात्रि में नन्दभवनप्रवेश की घोषणा होने पर शिल्पी दारुवर्मा ने एक कनक-तोरण बनाया था, ताकि जैसे ही चन्द्रगुप्त उसके नीचे से निकले, वह उस पर गिरा दिया जाय। चाणक्य इन सब भावी आशंकाओं से अवगत था। अतः उसने पर्वतक के भाई वैरोचक के हाथी को आगे किया, जिसको चाणक्य ने पर्वतक के मर जाने पर आधे राज्य का स्वामी बनाया था। वैरोचक और चन्द्रगुप्त दोनों को समान रूप से

सुसज्जित और अलंकृत किया गया, जिससे परिचित लोगों को भी भ्रम हो गया कि इनमें से कौन चन्द्रगुप्त है और कौन वैरोचक ! चन्द्रगुप्त की हस्तिनी पर वैरोचक को बैठाया गया और चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजा लोग वैरोचक का अनुगमन करने लगे। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने का भार बर्वरक नाम के एक महावत को सौंपा था, उसे वैरोचक की हस्तिनी पर बैठाया गया। उसने वैरोचक को चन्द्रगुप्त मानकर जैसे ही कटार निकाली, गजवधू उसे अपने ऊपर होने वाला प्रहार समझ कर तीव्रगति की अपेक्षा मन्दगति से चलने लगी। प्रथम गति के अनुसार दारुवर्मा ने चन्द्रगुप्त के ऊपर मन्त्रतोरण गिराने की योजना बनायी थी; लेकिन हस्तिनी की गति में अन्तर आने से मन्त्रतोरण के गिरने से बर्वरक मारा गया जो राक्षस का व्यक्ति था। पुनः दारुवर्मा ने शेष यन्त्रतोरण गिरा दिया, जिससे वैरोचक मारा गया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के आधे राज्य का भागी पर्वतक-भ्राता वैरोचक भी मर गया। अपने लक्ष्य को प्रभ्रष्ट देख दारुवर्मा भागा, लेकिन वैरोचक के पीछे-पीछे पैदल चलनेवालों ने लाठी से पीट-पीट कर उसे मार डाला। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को विषमिश्रित ओषधि पिलाने के लिए अभयदत्त नामक वैद्य को नियुक्त किया था। चाणक्य ने उसका प्रत्यक्षीकरण किया और सोने के पात्र में देने को कहा। उसमें डालने से ओषधि का रंग बदल गया, जिससे चाणक्य को ज्ञात हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। पुनः वही ओषधि उस वैद्य को पिला दी गयी और वह मर गया। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त को मारने के लिए प्रमोदक नाम के एक शयनाधिकारी को नियुक्त किया गया था। उसके द्वारा अत्यधिक धनव्यय करने पर चाणक्य को संदेह हो गया और उसे भी विचित्र ढंग से मरवा दिया गया। इसी भाँति सोते हुए चन्द्रगुप्त पर प्रहार करने के लिए राजा के शयन-कक्ष के शयनगृह में प्रवेश करने के पूर्व चाणक्य ने उसका सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया तो उसने देखा कि एक भित्ति-छिद्र से चींटियों की पंक्ति निकल रही है, जो अपने मुखों में भात के कणों को लिए हुए है। इससे चाणक्य को सन्देह हो गया कि इस शयनकक्ष के अन्दर कहीं-न-कहीं लोग छिपे हुए हैं। ऐसा मानकर उसने उस शयनगृह को जलवा दिया, जिससे उसके अन्दर छिपे हुए लोग धूमावरुद्ध दृष्टि होने से निकलने का मार्ग न पा सकें और सब जलकर मर गये।

विराधगुप्त इस वृत्तान्त को बतलाते हुए जब यह कह रहा था कि शकटदास को राजद्रोह के अपराध में शूली पर चढ़ा दिया गया, तभी सिद्धार्थक शकटदास को लेकर उपस्थित हुआ। शकटदास को सकुशल देखकर राक्षस के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। जब उसे यह मालूम हुआ कि सिद्धार्थक ने ही उसके प्राण बचाये हैं, तो उसने अपने शरीर से आभूषण उतार कर पुरस्काररूप में सिद्धार्थक को दे दिये। ये वही आभूषण थे, जिन्हें मलयकेतु ने कञ्चुकी द्वारा राक्षस को पहनने के लिए भेजा था। सिद्धार्थक ने उन आभूषणों को एक मुद्रा से मुद्रित कर अमात्य

राक्षस के भाण्डागार में रखते हुए कहा कि जब मुझे आवश्यकता होगी, इन्हें ले लूँगा। यह वही मुद्रा थी, जो राक्षसनामांकित थी और जिसे चाणक्य ने लेख के साथ दे दिया था।

शकटदास के कहने से सिद्धार्थक वह अंगुलिमुद्रा राक्षस को दे देता है। विराधगुप्त यह भी सूचना देता है कि संभवतः चाणक्य और चन्द्रगुप्त में किसी कारणवश मतभेद हो गया है और हो सकता है कि दोनों में कलह हो जाय; यद्यपि यह वास्तविकता नहीं थी। राक्षस इसे सच मान कर विराधगुप्त को पुनः पाटलिपुत्र भेजता है और कहता है कि वहाँ स्तनकलश नाम का एक वैतालिक रहता है, जो हमारा व्यक्ति है। उससे कह देना कि चन्द्रगुप्त की आज्ञा को जब चाणक्य भंग करे, तब उत्तेजक श्लोकों से चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काता रहे। राक्षस यह भी कहता है कि यदि कोई गुप्त सन्देश हो तो उसे करभक नामक हमारे गुप्तचर द्वारा प्रेषित करना।

इसी बीच कुछ विक्रेता आभूषण बेचने के लिए आते हैं और उन्हें बहु-मूल्य समझकर राक्षस शकटदास द्वारा खरीदवा लेता है। ये वही आभूषण हैं, जो कभी पर्वतक धारण किये हुए था और उसके मरने पर चन्द्रगुप्त ने उसके पारलौकिक कृत्य के उपलक्ष्य में गुणवान् ब्राह्मणों को देना चाहा था। चाणक्य ने इसके लिए विश्वावसु प्रभृति तीन भाइयों को भेजा था कि चन्द्रगुप्त से दान रूप आभूषण लेकर मेरे पास उपस्थित हो। इनके द्वारा ही वे आभूषण राक्षस को बेच दिये गये। इस प्रकार पर्वतक द्वारा धारित आभरण राक्षस के पास पहुँच जाते हैं जिन्हें आगे चलकर राक्षस को पहने देख मलयकेतु को यह संदेह हो जाता है कि हमारे पिता को इसी राक्षस ने मरवाया है।

उधर राक्षस को धोखे में डालने के लिए चाणक्य चन्द्रगुप्त से कृतक कलह कर लेता है। चन्द्रगुप्त राजा होने पर पाटलिपुत्र में 'कौमुदी महोत्सव' मनाना चाहता है, ताकि पाटलिपुत्र की खिन्न और उद्विग्न प्रजा आनन्द मनाये। चाणक्य उसका निषेध कर देता है और वह इस कारण कि यह समय सेना की तैयारी और दुर्गों का संस्कार करने का है, आनन्द मनाने का नहीं, क्योंकि राक्षस और मलय-केतु मिलकर किसी भी समय पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर सकते हैं। वस्तुतः यह बनावटी झगड़ा था, जिसे राक्षस आदि वास्तविक समझ बैठे थे। इससे राक्षस की अदूरदर्शिता ही सिद्ध होती है।

अनेक राज कार्यों की चिन्ता से राक्षस को नींद नहीं आती और उसके सिर में वेदना उत्पन्न हो गयी है। उसे देखने के लिए मलयकेतु भागुरायण के साथ आता है और आते हुए भागुरायण, जो चाणक्य का विश्वस्त व्यक्ति है, उसे ऐसा कुछ सुझाता है, जिससे राक्षस के प्रति उसके अन्दर अविश्वास का भाव उत्पन्न हो जाता है। धीरे-धीरे यह भाव दृढ़ होता जाता है। इसी बीच बिना सोचे-विचारे

मलयकेतु पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने का प्रस्ताव रखता है; लेकिन राक्षस इसे शुभ मुहूर्त में करने के लिए क्षपणक जीवसिद्धि से उचित समय जानना चाहता है।

चाणक्य की कार्यसिद्धि के लिए सिद्धार्थक शकटदास द्वारा लिखित कपट लेख और अलंकरणपेटिका को लेकर पाटलिपुत्र की ओर चल देता है। मार्ग में क्षपणक से उसकी बड़ी रोचक बातचीत होती है। सिद्धार्थक अपने को राक्षस का निकटस्थ व्यक्ति बताकर बिना भागुरायण से मलयकेतु कटक से निष्क्रमण की मुद्रा लिए हुए जाना चाहता है और गुल्माधिकारियों द्वारा पकड़कर भागुरायण और मलयकेतु के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। उधर क्षपणक निर्गमन-मुद्रा प्राप्त करने के लिए भागुरायण के पास जाता है और बातचीत के बीच यह कहता है कि राक्षस ने हमारे ही द्वारा विषकन्या के प्रयोग से पर्वतक को मरवाया है। इसी कुकृत्य के कारण पाटलिपुत्र से हमारा निष्कासन हुआ था और अब राक्षस हमसे ऐसे अकार्य करवाना चाहता है, ताकि मेरा इस संसार से ही निष्कासन हो जाय। इस बात को मलयकेतु सुन लेता है ओर क्षपणक का कार्य सिद्ध हो जाता है। तभी वह कहता है—'अये, श्रुतं मलयकेतु हतकेन। हन्त कृतार्थोऽस्मि' (पृ० 231)।

सिद्धार्थक जिस लेख को लिए हुए जा रहा था, वह लेख छीन कर पढ़ा जाता है, लेकिन मलयकेतु की समझ में नहीं आता कि यह कैसा लेख है; क्योंकि उसमें किसी व्यक्ति का नाम नहीं है और न यही बताया गया है कि वह लेख कहाँ से किसके पास भेजा जा रहा है। इसकी जानकारी के लिए सिद्धार्थक को मारा जाता है तो उसकी कक्ष से आभरणपेटिका गिर पड़ती है। जिस प्रकार कपट लेख अमात्य राक्षस के नाम वाली मुद्रा से मुद्रित था, उसी प्रकार इस पेटिका में भी मोहर लगी हुई थी। उसे खोलकर देखा गया तो उसमें वही आभूषण पाये गये, जो मलयकेतु ने अपने शरीर से उतार कर राक्षस को पहनने के लिए भेजे थे। इन्हीं आभूषणों को राक्षस ने सिद्धार्थक को पारितोषिक रूप में दिया था। सिद्धार्थक इन आभूषणों के विषय में भी कुछ नहीं बताता तो भासुरक द्वारा पुनः मारा जाता है; तब वह यह रहस्योद्‌घाटन करता है कि राक्षस ने हमें इस लेख के साथ चन्द्रगुप्त के पास भेजा है और कुछ मौखिक सन्देश भी दिया है जो इस प्रकार है—'ये जो चित्रवर्मा आदि पाँच राजा हैं, उनमें से प्रथम तीन मलयकेतु के राज्य को चाहते हैं और शेष दो उसकी हस्तिसेना को। आपने चाणक्य का निराकरण करके हमे प्रसन्न किया है और अब आशा है कि इन राजाओं का भी अर्थ सम्पादित होगा, जिसके विषय में हमने कहा है।' कपटलेख को पढ़कर और इस मौखिक सन्देश को सुनकर मलयकेतु को पूरा विश्वास हो जाता है कि राक्षस ने चन्द्रगुप्त के साथ कुछ गुप्त मन्त्रणा की है और वह मन्त्रि-पद के लिए चन्द्रगुप्त से चुपचाप मिलकर हमें मरवा देना चाहता है, तभी उसने सिद्धार्थक

द्वारा भेंट रूप में इन आभूषणों को भेजा है। अतः निश्चित ही यह लेख चन्द्रगुप्त को भेजा गया है।

मलयकेतु राक्षस को बुलवाता है। वह अनलंकृत होकर कुमार मलयकेतु का दर्शन नहीं करना चाहता; अतः विक्रेताओं से जो तीन आभूपण खरीदे गये थे, उनमें से एक पहन कर मलयकेतु से मिलने चल देता है। सिद्धार्थक के सामने उससे बातचीत की जाती है और अपने को निर्दोष सिद्ध करने के कि वह लाख प्रयत्न करता है लेकिन दोषमुक्त नही हो पाता, क्योंकि लेख और आभरणपेटिका सभी पर उसकी अँगूठी की मोहर है। राक्षस जिस आभूषण को पहने है, उसे प्रतिहारी पहचान लेती है कि यह पर्वतक के द्वारा पूर्वधारित आभूषण है। राक्षस चाणक्य की चाल में फँस जाता है। उसे बचने का कोई उपाय नहीं सूझता और अन्त में उसे कहना पड़ता है—'हन्त रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम' (पृ 256)।

मलयकेतु अपनी मूर्खतावश चित्रवर्मा आदि तीन राजाओं को गहरे गड्ढे खुदवाकर गड़वा देता है और दो को हाथी के पैरों से कुचलवा देता है। अन्त में वह राक्षस का भी परित्याग कर देता है। अपने नेत्रों के सामने चित्रवर्मा आदि राजाओं की नृशंसतापूर्ण मृत्यु को देखकर सेना व्याकुल हो उठती है। इस असमीक्ष्य-कारी दुराचार को देखकर शेष राजा अपने-अपने राज्यों की ओर प्रस्थान कर देते हैं और तभी उस कोलाहल के बीच भद्रभटादि चाणक्य के लोग मलयकेतु को पकड़ लेते हैं।

मलयकेतु से परित्यक्त होकर राक्षस अपने मित्र चन्दनदास को बचाने के लिए एकाकी चल देता है और पाटलिपुत्र के निकट आकर एक जीर्णोद्यान में छिपकर चन्दनदास का वृत्तान्त जानना चाहता है। यहाँ उसे एक पुरुष दिखायी पड़ता है, जो अपने गले में रस्सी बाँधकर आत्महत्या करना चाहता है। राक्षस अपने ही समान उसे भी दुःखी जानकर उसके आतमघात करने का कारण जानना चाहता है तो वह राक्षस से कहता है कि यहाँ पाटलिपुत्र में एक मणिकार श्रेष्ठी विष्णुदास (अथवा जिष्णुदास) रहता है, वह हमारा प्रिय मित्र है। वह अपना सारा गृहवैभव देकर अग्नि में प्रवेश करने के लिए नगर से बाहर निकल गया है। अपने मित्र के विषय में अश्रोतव्य को सुनूँ, उसके पहले मैं अपने आपको बाँधकर मर जाना चाहता हूँ। राक्षस विष्णुदास के अग्नि में प्रविष्ट होने कारण पूछता है, तो वह कहता है कि विष्णुदास का मित्र चन्दनदास है। उसने अपने घर में राक्षस के पुत्र-कलत्र को छिपाकर रखा था। इस अपराध में उसे बन्धनागार में डाल दिया गया था और अब उससे राक्षस के गृहजन को देने के लिए बार-बार कहा जाता है; लेकिन वह मित्र-स्नेहवश उन्हें नहीं समर्पित करता। इससे चाणक्य ने प्राणदण्ड का विधान करवाया है और चाण्डाल उसे वध्यस्थान की ओर ले जा रहे हैं। चन्दनदास की मृत्यु के

पूर्व विष्णुदास भी अग्नि में प्रविष्ट होकर मर जाना चाहता है। इस दुःखद समाचार को सुनकर राक्षस व्यथित हो उठता है और विष्णुदास को अग्नि में प्रविष्ट होने से रोकने के लिए कहता है और कहता है कि मैं इस खड्ग से चन्दनदास की रक्षा करूँगा। इस पर वह पुरुष कहता है कि इससे तो चन्दनदास का वध और शीघ्र हो जाएगा; क्योंकि एक बार सिद्धार्थक नाम का व्यक्ति घातकों की असावधानी से शकटदास को वध्यस्थान के छुड़ाकर ले गया था। इस प्रमादवश चाणक्य ने घातकों को मरवा दिया। तब से जब घातक लोग वध्यस्थान के निकट किसी व्यक्ति को शस्त्रपाणि देखते हैं, तो मार्ग में ही उसका वध कर देते हैं। अन्ततोगत्वा राक्षस बिना शस्त्र के ही चन्दनदास को मुक्त करने के लिए चल देता है। वस्तुतः वह रज्जुहस्त पुरुष भी चाणक्य का ही व्यक्ति था, जो उदुम्बर नामक चर द्वारा राक्षस के विषय में बताये जाने पर चाणक्य द्वारा भेजा गया था।

सिद्धार्थक और उसका मित्र समिद्धार्थक चाण्डाल का वेश धारण करके चन्दनदास को वध्यस्थान की ओर ले जाते हैं। बीच में चन्दनदास और उसकी पत्नी तथा पुत्र की बातचीत से बड़ा ही करुण दृश्य उपस्थित होता है। जब पत्नी छाती पीटती हुई रक्षा के लिए लोगों को पुकारती है, तो राक्षस सहसा उपस्थित होता है और कहता है, 'हे शूलायतन पुरुषो! हमारे गले में इस वध्यमाला को डालो'। चाणक्य को इस बात की सूचना दी जाती है और वह घटनास्थल पर उपस्थित होकर राक्षस के सामने यह निवेदन करता है कि चन्दनदास के प्राणों की रक्षा तभी हो सकती है, जब वह चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनना स्वीकार करे। राक्षस के सामने अब कोई विकल्प नहीं रहता है। अपने मित्र के प्राणों की रक्षा के लिए वह चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनना स्वीकार करता है। उसके कहने पर मलयकेतु भी छोड़ दिया जाता है और भद्रभट उसे उसके राज्य में प्रतिष्ठित कर लौट आते हैं। चन्दनदास पृथ्वी के सभी नगरों के श्रेष्ठिपद पर प्रतिष्ठित किया जाता है और अन्त में पूर्णप्रतिज्ञ होकर चाणक्य अपनी शिखा बाँधता है। इस प्रकार इस नाटक की सुखान्त परिणति हो जाती है।

इतिवृत्त के स्रोत

संस्कृत के नाटककार अपने-अपने नाटकों का कथानक प्रायः रामायण महाभारत, पुराण और बृहत्कथा आदि से लेते रहे हैं। रामायण और महाभारत की भाँति गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' भी कभी जन-जीवन में व्याप्त थी और उसकी कथाएँ मानव-समाज में सर्वत्र प्रचलित थीं। ऐसी सर्वाधिक प्रचलित कथाओं में वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की प्रणय कथा है, जिसे भास ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण्' में तथा श्रीहर्ष ने 'रत्नावली' और प्रियदर्शिका'

नाटिकाओं में अपनाया। चाणक्य द्वारा नन्दों के विनाश और चन्द्रगुप्त के सिंहासनारोहण की कथा, जो आज जन-मानस में समायी हुई है, उसका भी मूलस्रोत 'वृहत्कथा' ही है। धनञ्जय ने तो नाट्यवस्तु को रामायण और बृहत्कथा आदि से लेने का निर्देश भी किया है—

> इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं
> रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च।
> आसूत्रयेत्तदनुनेतृरसा नुगुण्या-
> च्चित्रां कथामुचितचारुवच:प्रपञ्चैः ॥ दशरूपक 1/68

हमारे नाटककार विशाखदत्त ने भी मुद्राराक्षस के राजनैतिक कथानक को बृहत्कथा ही से लिया है। धनञ्जय के छोटे भाई धनिक ने दशरूपावलोक में 'बृहत्कथामूल मुद्राराक्षसम्' (उपर्युक्त श्लोक की वृत्ति) कहकर इसी बात की पुष्टि की है। गुणाढ्य की बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में थी, और हर्ष के समय तक उपलब्ध थी। इस तथ्य की ओर संकेत बाण ने 'कादम्बरी' में 'निबद्धेयमतिद्वयी-कथा'[1] और हर्षचरित' में 'हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा'[2] कहकर किया है। विशाखदत्त बाण से प्राचीन हैं, ऐसा कुछ लोगों का मत है, तो उन्होंने निश्चित ही अपने नाटकीय कथानक को बृहत्कथा से लिया होगा, जो उस समय अपने मूलरूप में उपलब्ध रही होगी। दु:ख का विषय है कि वह आज पैशाची प्राकृत में नहीं मिलती, जो कभी लोकभाषा रही होगी। आजकल उसके दो संस्कृत रूपान्तर उपलब्ध हैं—एक है क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथा' और दूसरा है सोमदेव का 'कथासरित्सागर'। बृहत्कथामञ्जरी में नाटकीय कथानक को मूलरूप में इस प्रकार दिखाया गया है—

> चाणक्यानाम्ना तेनाथ शकटालगृहे रहः।
> कृत्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो नृपः॥
>
> योगनन्देयशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः।
> चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महौजसा॥[3] (2/216)

'कथासरित्सागर' के प्रथम लम्बक के पञ्चम तरंग में भी यह कथा दी हुई है,

---

1. कथामुख, श्लोक 20
2. प्रथम उच्छ्वास श्लोक 17
3. दशरूपक 1/68 की वृत्ति में उद्धृत।

जो संक्षेपतः इस प्रकार है—

पाटलिपुत्र में योगनन्द नामक राजा राज्य करता था। वह काम, क्रोध और लोभ आदि के वशीभूत होकर गजेन्द्र के समान उन्मत्त हो गया था। उसने मूर्खतावश अपने मन्त्री शकटाल को उसके सौ पुत्रों के साथ अन्धकूप में डलवा दिया था। शकटाल के सभी पुत्र उस अन्धकूप में क्षुधा से पीड़ित होकर मर गये, केवल शकटाल ही जीवित बचा। येन केन प्रकारेण बररुचि के प्रार्थना करने पर वह अन्धकूप से निकाला गया और उसे पुनः मन्त्रिपद दिया गया; लेकिन वह अपने पुत्रों के निधन के दुःख को भुला नहीं पाया था क्योंकि उसने अपनी आँखों के सामने अपने क्षुधाग्रस्त पुत्रों को तड़प-तड़पकर मरते देखा था। अतः वह योगनन्द से बदला लेने का उपाय सोचा करता था। एक दिन उसने देखा कि एक ब्राह्मण मार्ग में भूमि खोद रहा है। कारण पूछने पर उस ब्राह्मण ने बताया कि मैं कुशों का उन्मूलन कर रहा हूँ; क्यों इन्होंने मेरे पैरों में चुभ कर व्रण कर दिया है। शकटाल ने उस ब्राह्मण को अपने कार्य के लिए उपयुक्त समझा और उसे राजा नन्द के यहाँ त्रयोदशी तिथि को श्राद्ध में भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया और उसे एक लाख स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणारूप में देने का लालच दिया। फिर शकटाल उसे अपने घर ले गया। यह ब्राह्मण चाणक्य था। श्राद्ध के दिन शकटाल उसे राजा के पास ले गया और राजा के द्वारा स्वीकार किए जाने पर उसे सर्वोच्च आसन पर बिठाया। लेकिन सुबन्धु नामक ब्राह्मण उस आसन पर बैठना चाहता था। शकटाल ने इस कलह के विषय में राजा से कहा तो उसने सुबन्धु को उस आसन पर बैठने की आज्ञा दी। चाणक्य इस अपमान को नहीं सह सका और उसने सभी के सामने क्रोध से प्रज्ज्वलित होकर शिखा खोलकर यह प्रतिज्ञा की कि सात दिनों के अन्दर जब मैं राजा नन्द को मार डालूँगा, तभी अपनी शिखा बाँधूँगा। ऐसा कहकर और राजा नन्द के कुपित होने पर वह वहाँ से चला गया; लेकिन शकटाल ने उसे अपने घर में शरण दी। यहाँ चाणक्य एकान्त में कृत्या की साधना करने लगा, जिसके प्रभाव से योगनन्द दाहज्वर से सातवें दिन मर गया। राजा के मरने पर शकटाल ने चन्द्रगुप्त को राजपद पर अभिषिक्त किया और बुद्धि में वृहस्पति के समान चाणक्य को उसका मन्त्री बनाया; पुनः अपने पुत्रों के शोक से दुःखी और विरक्त होकर वह वन में चला गया।

'कथासरित्सागर' की इस कथा और मुद्राराक्षस की कथावस्तु में बहुत कुछ साम्य है। कथासरित्सागर में नन्द के निन्यानवे करोड़ स्वर्णमुद्राओं के स्वामी होने का उल्लेख है—'नवाधिकाया नवतेः कोटीनामधिपो हि सः' (1/4/95)। इसी बात को विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त के साथ कृतक कलह के प्रसंग में इस प्रकार

कहा है—

केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते
नन्दाः पर्यायभूताः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य ।। (3/27)

इसी प्रकार नन्द द्वारा चाणक्य को उच्चासन से हटाये जाने और उसके कुपित होकर प्रतिज्ञा करके नन्दवंश का उन्मूलन कर चन्द्रगुप्त को राजा बनाने की जो घटना है, उसका भी उल्लेख मुद्राराक्षस के इन श्लोकों में किया गया है—

शोचन्तोऽवनतैर्नराधिपभयाद् धिक्शब्दगर्भैर्मुखै—

मर्मिग्रासनतोऽवकृष्टमवशं ये दृष्टवन्तः पुरा ।
ते पश्यन्ति तथैव सम्प्रति जना नन्दं मया सान्वयं
सिंहेनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात्सिंहासनात्पातितम् ।। (1/12)
× × ×
कृतागाः कौटिल्यो भुजग इव निर्याय नगरा—

द्यथा नन्दान् हत्वा नृपतिमकरोन्मौर्यवृषलम् ।
तथाहं मौर्येन्दोः श्रियमपहरामीति कृतिधीः
प्रकर्षं मद्बुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसितः ।। (3/11)

इन विवरणों से स्पष्ट है कि विशाखदत्त के नाटकीय कथानक का मुख्य स्रोत 'बृहत्कथा' है, यद्यपि चाणक्य द्वारा नवनन्दों के विनाश और चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की कथा पुराणों में भी वर्णित है। श्रीमद्भागवत में जहाँ कलियुग के राजाओं का वर्णन है, वहाँ यह घटना भी वर्णित की गयी है—

नव नन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति ।
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ।।
स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति । (12/1/12-13)

इस कथन से पूर्णतः साम्य रखने वाला 'विष्णुपुराण' का यह सन्दर्भ है—
'ततश्च नव चैतान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणास्समुद्धरिष्यति । तेषामभावे मौर्याः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति । कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्पन्नं राज्येऽभिषेक्ष्यति ।' (4/24/26-28)

वायुपुराण में इस कथानक की चर्चा इस रूप में है—

> महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ।
> उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो वै द्विरष्टभिः ।
> भुक्त्वा मही वर्षशतं नन्देन्दुः स भविष्यति ।
> चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति ।
> चतुर्विंशत्समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति ।। (99/329-31)

विशाखदत्त पुराणों के भी ज्ञाता थे। बृहत्कथा के साथ-साथ उन्होंने हो सकता है पुराणों के इन सन्दर्भो को भी पढ़ा हो। अर्थशास्त्र और कामन्दकीय नीतिसार के तो वह विशेष मर्मज्ञ ही थे। इन सब ग्रन्थों का अनुशीलन कर और उनसे मूल कथानक को लेकर उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा उसे अद्भुत रूप में प्रस्तुत किया है।

विशाखदत्त कवि और नाटककार

कवि-रूप

विशाखदत्त एक महान् नाटककार के साथ-साथ लोकोत्तर वर्णन में निपुण एक कवि भी हैं। अतः इस अद्भुत संविधानवाले नाटक में उनका कवि-हृदय स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ दिखायी पड़ता है। उदाहरण के रूप में यह श्लोक देख सकते हैं—

> आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
> सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
> जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
> को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्॥ श्लोक 8, प्रथमांक

यहाँ चाणक्य कहता है कि मेरे रहते भला ऐसा कौन है जो चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को छीन सकता है। उसको छीनना उतना ही दुष्कर है, जितना दुष्कर सिंह को पराभूत कर उसके दाँत उखाड़ना है और वह सिंह भी साधारण नहीं है; अपितु अभी-अभी हाथी को मार कर उसने उसका रक्त-पान किया है, जिससे उसके दाँत लाल हो गये हैं। जमुहाई लेने से उसका फैला मुख इस प्रकार चमक रहा है, जैसे सन्ध्या समय उदीयमान चन्द्रमा की अरुण वर्ण कला हो। इस श्लोक का प्रत्येक पाद एक विशिष्ट अर्थ की अभिव्यञ्जना करता है। प्रथम पाद से यह ध्वनि निकलती है कि जैसे कोई सिंह भीषण युद्ध के पश्चात् हाथी को मारे तो तुरन्त उसका क्रोध शान्त नहीं होता, उसी प्रकार चाणक्य ने अभी शीघ्र ही नव नन्दों का विनाश किया है, अतः उसका भी क्रोध शान्त नहीं हुआ है। द्वितीय पाद से यह व्यक्त होता है कि जैसे उदीयमान चन्द्र की कला अभिनव,

लोकाह्लादकारी एवं सतत् वर्धिष्णु होती है ; उसी प्रकार चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी भी नवीन, प्रजा को आनन्द प्रदान करनेवाली तथा भविष्य में निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होनेवाली है। पुनः तृतीय पाद से यह अभिव्यक्ति होती है कि जैसे कोई सिंह हाथी को मारकर उसका रक्त-पान कर सोने के उपक्रम में जमुहाई तो ले, लेकिन सहसा सोये नहीं, उसी प्रकार चाणक्य ने नन्दों को मारकर उनका राज्य चन्द्रगुप्त को सौंप दिया है, लेकिन वह आराम से सोया नहीं है अपितु परिस्थितियों के प्रति सतत् जागरूक है। इस भाव का द्योतन वह आगे चलकर इन शब्दों द्वारा करता है—'तन्मयाप्यस्मिन् वस्तुनि न शयानेन स्थीयते। यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्नः' (पृ० 67)। अन्त में, चतुर्थ पाद से चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी का दुरुद्धरत्व व्यञ्जित होता है। भाव यह है कि सिंह की दाढ़ को उखाड़ना जितना दुष्कर है, उतना ही दुष्कर चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को छीनना है। यह एक श्लोक ही विशाखदत्त की कवित्वशक्ति का परिचायक है। इसमें नाटकीयता भले न दिखायी दे ; लेकिन उत्कृष्ट कवित्व अवश्य ही विद्यमान दिखायी देता है। ऐसा व्यंग्यार्थबोधक श्लोक संस्कृत के श्रेष्ठ कवियों की कृतियों में भी आसानी से देखने को नहीं मिलेगा। इतना ही नहीं, रस की भी दृष्टि से इस श्लोक का महत्त्व है। यहाँ वीररस में सञ्चरण करते हुए अमर्षाख्य सञ्चारी भाव की सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

इसी प्रकार 'श्यामीकृत्याननेन्दूनरियुवतिदिशां संततैः शोकधूमैः' (1-11) 'शनैः श्यानीभूताः सितजलधरच्छेदपुलिनाः' (3/7) इत्यादि श्लोक रूपकानुप्राणित उपमालंकार के सुन्दर निदर्शन हैं। 'आकाशं काशपुष्पच्छविमभिभवता भस्मना शुक्लयन्ती' (3/20) इस श्लोक में उपमा की छटा दर्शनीय है। इसी भाँति 'गृध्रैराबद्धचक्रम्' (3/28) इस श्लोक में 'गृध्रैरेवधूमैः' ऐसा अर्थ करने से रूपकालंकार की हृद्यता दर्शनीय है। इसके साथ ही रस की दृष्टि से इसमें वीभत्स रस की भी चर्वणा होती है। 'श्वसन्तः शाखानां व्रणमिव निबध्नन्ति फणिनः' (6/12) तथा 'वृक्षाः श्मशानमुपगन्तुमिव प्रवृत्ताः' (6/13) यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार की योजना कितनी सुन्दर हुई है, यह देखते ही बनता है इसी अंक में एक ऐसा श्लोक है, जिसके प्रत्येक पाद में उपमालंकार की छटा दिखाई पड़ती है। श्लोक यह है—

विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भरचनं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिव नाशेन सुहृदाम्।
फलैर्हीना वृक्षा विगुणनृपयोगादिव नया—
स्तृणैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः (6-11)

मलयकेतु से परित्यक्त राक्षस चन्दनदास का वृत्तान्त जानने के लिए पाटलिपुत्र की उपकण्ठभूमि में स्थित जीर्णोद्यान में जब प्रवेश करता है, तो उस उद्यान की नष्टप्राय सुन्दरता उसे किस रूप में दिखाई पड़ती है, उसी का यहाँ वर्णन है। इस उद्यान में उत्कृष्ट शिल्पकला से बनाया गया प्रासाद उसी प्रकार विनष्ट हो गया, जैसे धर्मादि पुरुषार्थो का सेवन करने वाले महान् लोगों द्वारा स्थापित वंश नष्ट हो जाता है। इसमें स्थित सरोवर मित्रों के विनाश से सज्जन व्यक्ति के हृदय की भाँति सूख गया। इसके वृक्ष भी फलों से रहित हैं, जैसे गुणहीन राजा को पाकर नीति निष्फल हो जाती है। इसकी भूमि तृणों से उसी प्रकार आच्छादित है, जिस प्रकार मूर्ख व्यक्ति की बुद्धि कुनीतियों से आच्छन्न हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक पाद में शोभायमान उपमा का दर्शन शायद ही अन्यत्र देखने को मिले। एक के बाद एक राक्षस के मुख से निकले हुए ये श्लोक उसकी मानसिक वेदना के परिचायक हैं। विशाखत्त ने निरन्तर विफलता से आहत राक्षस के मनोभावों का यहाँ बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है। यह प्रसंग ही अत्यन्त कारुणिक है और विशाखदत्त के रसाक्षिप्त चित्त की अनुभूति कराता है।

इसी छठे अंक में चाणक्य की नीति पर रज्जु का आरोप कर जो साङग रूपक निरूपित किया गया है, उसकी भी शोभा इस पद्य में दर्शनीय है—

> षड्गुणसंयोगदृढा उपायपरिपाटी घटितपाशमुखी।
> चाणक्यनीतिरज्जू रिपुसंयमनोद्यता जयति॥ (6-4)

इसका भाव यह है—चाणक्य की नीति रूपी रज्जु (रस्सी), जो शत्रु को बाँधने में उद्यत है, उसकी जय हो। जैसे रस्सी छह लड़ियों से बनायी जाने पर बड़ी सुदृढ़ होती है, उसी प्रकार चाणक्य की नीति भी सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय इन गुणों से युक्त होने के कारण अत्यन्त सुदृढ़ है। नीतिरूपी रस्सी साम-दान-दण्ड भेद इन उपायों से बने हुए पाशरूपी मुखवाली है। इस प्रकार यहा समस्तवस्तुविषयक रूपक की बड़ी सुन्दर योजना हुई है।

एक अन्य पद्य में शरत् (ऋतु) को रतिकथा में चतुर दूती के सामन वर्णित किया गया है। चन्द्रगुप्त सुगाङ्ग प्रासाद से स्वच्छसलिला गंगा को प्रवहमान देखता है, तो वह एक मानिनी नायिका की भाँति दिखायी पड़ती है, जिसे एक चतुर दूती के समान शरत् उसके प्रियतम समुद्र से मिलाने ले जा रही है। गंगा के रूठने का कारण है—वर्षाकाल में समुद्र का बहुवल्लभ होना। जैसे किसी नायिका का पति अनेक वल्लभाओं का संग करने से उसके कोप का भाजन होता है। वह उससे

रूठती है, लेकिन प्रणयकथा में चतुर दूती उसे समझा-बुझा कर ठीक रास्ते पर लाती है और उसे प्रसन्न कर पति से मिलाने ले जाती है, उसी प्रकार शरत् भी गंगा को मनाकर समुद्र से मिलाने ले जा रही है। वर्षाकाल में अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ समुद्र में जा मिलती हैं। यही समुद्र का बहुवल्लभत्व है, क्योंकि समुद्र को नदियों का पति कहा कहा गया है। अनेक सरिताओं के साथ समुद्र का समागम देख गंगा उससे कुपित हो जाती है। वर्षाकाल का बढ़ा हुआ मलिन जल उसके कालुष्य का सूचक है और शरत्कालिक स्वच्छ जल उसकी प्रसन्नता का। शरद् ऋतु में गंगा की धारा संकुचित हो जाती है, यह नायिका के कृशत्व का सूचक है। पति से रूठी हुई नायिका जैसे कृशकाय हो जाती है, वही हाल गंगा का शरद्ऋतु में है। उस कृशीभूत स्वच्छ सलिला अर्थात् प्रसन्न गंगा को दूती शरत् उसके प्रियतम समुद्र से मिलाने ले जा रही है। ये भाव निम्न श्लोक में व्यक्त किये गये हैं, जो विशाखदत्त के कविहृदय के परिचायक हैं—

> भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
> मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।
> सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
> गंगां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् ॥ (3-9)

इस श्लोक में जहाँ यह कहा गया है कि चाणक्य का तेज सूर्य के तेज से भी बढ़कर है, वहाँ व्यतिरेकालंकार का दर्शन होता है। इसी प्रकार का वर्णन 'यो नन्द मौर्यनृपयोः परिभूय लोकम्' (3-10) में भी है। इसके अतिरिक्त मुद्राराक्षस में श्लेष, अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा तथा समासोक्ति अलंकारों की भी चारुता यत्र-तत्र दर्शनीय है। कहीं-कहीं बिना किसी अलंकार के विशाखदत्त के वर्णन इतने सजीव हैं कि उनके प्रति सहृदय व्यक्ति सहसा आकृष्ट हो जाता है। पंचम अंक (श्लोक 23) में वह गौडाङ्गनाओं के सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होकर कहते हैं कि वे अपने सुन्दर कपोलों में लोध्रपुष्प के पराग का लेप करती हैं और उनके काले और घुँघराले केश भौंरों की भी कालिमा को तिरस्कृत कर देते हैं—

> गौडीनां लोध्रधूलीपरिमलबहुलान्धूमयन्तः कपोलान्
> क्लिश्नन्तः कृष्णमानं भ्रमरकुलरुचः कुञ्चितस्यालकस्य ॥

इस प्रकार का वर्णन एक सहृदय कवि ही कर सकता है। उनके पद्यों में ही नहीं, अपितु गद्य में भी काव्यात्मकता दर्शनीय है। द्वितीय अंक में वैरोचक के

राज्याभिषेक के पश्चात् उसको वस्त्रालंकारों से सुसज्जित करने का कितना मनो-मुग्धकारी वर्णन दीर्घसमासयुक्त पदावली द्वारा किया है—

'कृताभिषेके किल वैरोचके, विमलमुक्तामणिपरिक्षेपविरचित चित्र-पटमयवारबाणप्रच्छादितशरीरे मणिमयमुकुटनिविडनियमितरुचिरतर-मौलौ सुरभिकुसुमदामवैक्ष्यावभासितविपुलवक्षः स्थले···देवस्य नन्दस्य भवनं प्रविशति वैरोचके' (पृ० 128)।

इसी प्रकार तृतीय अंक में दीर्घसमासयुक्त वाक्य की चारुता दर्शनीय है, जो कञ्चुकी द्वारा उक्त है—

'आर्य, प्रणतसंभ्रमोच्चलितभूमिपालमौलिमालामाणिक्यशकलशिखा-पिशङ्गीकृतपादपद्मयुगलः सुगृहीतनामधेयो देवश्चन्द्रगुप्त आर्य शिरसा प्रणम्य विज्ञापयति—अकृतक्रियान्तरायमार्यं द्रष्टुमिच्छामि।' (पृ० 160)

अर्थात् नतशिर और सम्भ्रम में उठे हुए राजाओं के मस्तकों पर बँधे मुकटों में जड़े हुए माणिक्य-खण्डों की किरणों से पीत रक्त होते रहते हैं दोनों चरण-कमल जिसके, ऐसा प्रातः स्मरणीय नामवाला चन्द्रगुप्त आपको शिर से प्रणाम कर निवेदन करता है कि यदि आपके कार्यों में कोई विघ्न न हो तो मैं आपको देखना चाहता हूँ।

नाटककार के द्वारा प्रयुक्त गद्यांशों में भी काव्यात्मक चारुता दर्शनीय है। वह किसी घटना-विशेष का वर्णन करते हुए कितना सजीव चित्र प्रस्तुत करता है, यह निपुणक नामक चर की इस उक्ति में देखा जाता है, जहाँ वह चन्दनदास के घर में रह रही राक्षस की पत्नी की अँगुली से विगलित अंगुलिमुद्रा का रोचक वर्णन करता है, जो लुढ़कती हुई उसके पास आकर उसी प्रकार रुक जाती है, जैसे कोई नववधू ससुर तथा गुरुजन आदि को प्रणाम करके चुपचाप खड़ी हो जाती है—

ततश्च एकस्मादपवरकात्पञ्चवर्षदेशीयः प्रियदर्शनीयशरीराकृतिः कुमार को बालत्वसुलभकौतूहलोत्फुल्लनयनो निष्क्रमितुं प्रवृत्तः। ततो हा निर्गतो हा निर्गत इति शङ्कापरिग्रहनिवेदयिता तस्यैवापवरकस्याभ्यन्तरे स्त्रीजनस्योत्थितो महान् कलकलः। तत ईषद्द्वारदेशदापितमुख्या एकया स्त्रिया स कुमारको निष्क्रामन्नेव निर्भत्स्यावलम्बितः कोमलया बाहुलतया। तस्याः कुमारसरोधसम्भ्रमप्रचलिताङ्गुलेः करात् पुरुषाङ्गुलिपरिणाह-प्रमाणघटिता विगलितेयमङ्गुलिमुद्रिका देहली बन्धेपतिता उत्थिता तया अनवबुद्धैव मम चरणपार्श्वं समागत्य प्रणामनिभृता कुलवधूरिव निश्चला संवृत्ता (पृ० 79-80)

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि इस नाटक में इतने बड़े-बड़े संवाद होने पर भी वे अरुचि-उत्पादक नहीं होते। इन बड़े संवादों में भी वर्णन इतना सजीव और

कौतूहलवर्धक है कि श्रोता उसे सुनकर कभी उद्विग्न नहीं होता। यह विशाखदत्त के काव्यात्मक वर्णन का सुन्दर निदर्शन है।

नाटककार-रूप

विशाखदत्त एक अच्छे कवि होने के साथ-साथ कुशल नाटककार भी हैं। इस नाटक का सर्वाधिक वैशिष्ट्य इस बात में है कि इसमें आदि से अन्त तक विस्मय का भाव बना रहता है। यद्यपि धनञ्जय ने निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस की योजना करने का विधान बताया है—कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् (दशरूपक 3-33); लेकिन ढुंढिराज तो इसमें सर्वत्र ही अद्भुत रस का विलास बताते हैं (कर्नेद नाटकस्याद्भुतरसविलसत्संविधानप्रवीणः)। इसमें वह सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं, जो एक नाटक में होनी चाहिए। सभी नाटकों की भाँति इसका भी प्रारम्भ नान्दी-पद्यों से और अवसान भरतवाक्य से होता है। इसके नान्दी-पद्य मांगलिक होते हुए भी वस्तुनिर्देशात्मक हैं। उनसे किन-किन अर्थों की व्यञ्जना होती है, इसकी चर्चा टीकाकार ढुंढिराज ने की है। नान्दी के पश्चात् सूत्रधार रंगमञ्च पर आता है और नटी से बातचीत करता है। इसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं, जैसा कि धनञ्जय ने कहा है—

> सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्।
> स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्॥
> प्रस्तावना वा··· ··· ··· ॥ (दशरूपक 3-7-8)

सन्धि-सन्ध्यंग-योजना

सूत्रधार और नटी के जाने के पश्चात् वस्तुतः नाटक का प्रारम्भ होता है। सम्पूर्ण नाटकीय इतिवृत्त पाँच सन्धियों में विभक्त किया जाता है। ये सन्धियाँ हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। ये पाँचों सन्धियाँ एक-एक अर्थ-प्रकृति और अवस्था के योग से बनती है। अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य तथा अवस्थाएँ भी पाँच हैं—आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। विशाखदत्त ने अपने नाटक में इन पाँचों सन्धियों की बड़े सुन्दर ढंग से योजना की है। प्रथम अंक में जहाँ चाणक्य निपुणक नाम के चर से कहता है—भद्र, श्रुतम्। अपसरन चिरादस्य परिश्रमस्यानुरूपं फलमधिगमिष्यसि। (पृ० 81) और चर—'यदार्य आज्ञापयति' कहकर निकल जाता है, वहाँ मुख सन्धि समाप्त होती है और प्रतिमुख सन्धि प्रारम्भ होती है जो अंक के साथ ही समाप्त हो जाती है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण दूसरे अंक में गर्भ सन्धि की और तीसरे तथा चौथे अंक में विमर्श-सन्धि की योजना की गयी है।

यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते नाटकीय इतिवृत्त इतना विस्तृत हो जाता है कि उसका उपसंहार करने में विशाखदत्त को तीन अंकों (5, 6, 7) की रचना करनी पड़ती है।

नाटक में इन पाँचों सन्धियों में 64 सन्ध्यंग होते हैं। विशाखदत्त ने अपनी नाट्यकृति में इन सबका समायोजन किया है, यह ढुंढिराज की टीका से स्पष्ट हो जाता है; क्योंकि उन्होंने सभी अंगों का यथास्थान निर्देश किया है। इससे विशाखदत्त के नाट्य-कौशल का सहज अनुमान हो जाता है।

अंक-विभाजन

विशाखदत्त ने अपने नाटक का विभाजन अंकों में किया हैं। नाटक में प्रायः पाँच से सात अंक देखे जाते हैं। कालिदास का 'मालविकाग्निमित्र' नाटक पाँच अंकों का है और 'विक्रमोर्वशीय' भी पाँच अंकों का है, यद्यपि उसके कथानक के दिव्यमानुषसंश्रित होने से उसे त्रोटक भी कहा जाता है। भास के 'स्वप्नवासवदत्त' और 'अभिषेक' छः-छः अंकों के नाटक हैं तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तल' 'महावीरचरित' 'उत्तररामचरित' और 'वेणीसंहार'— ये सब सात अंकों के नाटक हैं। विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' भी सात अंकों का नाटक है। दस अंकों के प्रायः प्रकरण देखे जाते हैं, जैसे शूद्रक का 'मृच्छकटिक' और भवभूति का 'मालतीमाधव'। प्रायः अच्छे नाटक सात अंकों के ही पाये जाते हैं। इस दृष्टि से 'मुद्राराक्षस' की भी गणना अच्छे नाटकों में की जानी चाहिए।

विशाखदत्त ने इस नाटक में किस प्रकार अंकों की योंजना की है, उससे उनके नाट्यरचना-कौशल पर प्रकाश पड़ता है। इन अंकों की योजना प्रायः पक्ष-विपक्ष क्रम से की गयी है। प्रथम अंक का घटना-चक्र चाणक्य से सम्बद्ध है तो दूसरे का प्रतिपक्षीय राक्षस से सम्बद्ध। पुनः तृतीय में चाणक्य और चन्द्रगुप्त का मुख्य रूप ये संवाद है तो चतुर्थ में राक्षस और मलयकेतु का। पञ्चम में दोनों पक्षों के मिले-जुले पात्र हैं। उदाहरणतः एक ओर चाणक्यपक्षीय क्षपणक जीवसिद्धि, सिद्धार्थक और भागुरायण हैं तो दूसरी ओर राक्षस और मलयकेतु। षष्ठ में मुख्यतः संवाद रज्जुहस्त पुरुष, जो चाणक्य का व्यक्ति है और राक्षस के बीच में होता है। अन्त में, सप्तम अंक में दोनों पक्षों के प्रधान, अप्रधान सभी पात्र रंगमञ्च पर उपस्थित होते हैं और नाटक की सुखान्त परिणति हो जाती है।

घटना-स्थल

विशाखदत्त ने दर्शकों के अन्तःकरण में उत्सुकता उत्पन्न करने के लिए अंकों का भी विभाजन दृश्यों में किया है। नाटक में घटित घटनाओं को विविध दृश्यों में दिखाने से दर्शकों का मन कभी उद्विग्न नहीं होता, अपितु नवीन-नवीन दृश्यों को

देखने का कुतूहल बढ़ता जाता है। नाटक के प्रत्येक अंक में जो दृश्य उपस्थित किये गये हैं, वे इस प्रकार हैं—

अंक 1

दृश्य एक—पाटलिपुत्र में चाणक्य का गृह।

अंक 2

दृश्य एक—मलयकेतु के राज्य में राक्षस के घर की ओर जाने वाला मार्ग।
दृश्य दो—राक्षस का गृह।

अंक 3

दृश्य एक—पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त का सुगाङ्ग-प्रासाद।
दृश्य दो—चाणक्य का गृह।
दृश्य तीन—वही, जैसा कि दृश्य एक में है।

अंक 4

दृश्य एक—वही, जैसा कि द्वितीय अंक का दृश्य एक है।
दृश्य दो—जैसा कि द्वितीय अंक दृश्य दो है।

अंक 5

दृश्य एक—मलयकेतु का स्कन्धावार।
दृश्य दो—वहीं एक आस्थान मण्डप।
दृश्य तीन—उसी स्कन्धावार में राक्षस का निवास-स्थान।
दृश्य चार—वही, जैसा कि दृश्य दो है।

अंक 6

दृश्य एक—पाटलिपुत्र का एक मार्ग।
दृश्य दो—पाटलिपुत्र की उपकण्ठभूमि में जीर्णोद्यान।

अंक 7

दृश्य एक—पाटलिपुत्र में वध्यस्थान।
दृश्य दो—पाटलिपुत्र का राजप्रासाद।

इन दृश्यों को देखने से पता चलता है कि नाटकीय कार्यजात के मुख्यत:

तीन घटना-स्थल हैं—पाटलिपुत्र, मलयकेतु की राजधानी और पाटलिपुत्र के निकट मलयकेतु का स्कन्धावार। इस प्रकार घटनास्थलों की योजना कर विशाखदत्त ने वह नाट्यरचना-कौशल दिखाया है, जिसे यूनानी लेखकों ने 'यूनिटी ऑव प्लेस' (Unity of place) कहा है।

घटनाओं का काल-निर्णय

धनञ्जय ने दशरूपक में अंक का लक्षण करते हुए कहा है कि इसमें एक दिन की घटनाएँ वर्णित होनी चाहिए और उन्हें एक ही प्रयोजन से सम्बद्ध होना चाहिए। इसके साथ ही इसमें नायक का भी नैकट्य बना रहना चाहिए; तीन या चार पात्र होने चाहिए और अन्त में उनका निर्गमन दिखलाना चाहिए—

एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम्।
पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कं तेषामन्तेऽस्यनिर्गमः॥ (3/36)

विचार करने पर यह लक्षण उस तथ्य की ओर इंगित करता है, जिसे यूनानी नाट्यविदों ने 'यूनिटी ऑव टाइम' (Unity of time) कहा है। इससे प्रतीत होता है कि यूनानी लेखकों ने ऐसा कहकर किसी नवीन तथ्य पर प्रकाश नहीं डाला है। समय की एकता या एकरूपता का ध्यान हमारे यहाँ के नाट्यशास्त्रियों ने भी रखा है।

प्रथम अंक में निपुणक नाम का चर चाणक्य के पास आता है, उससे चाणक्य की बातचीत होती है, चाणक्य सिद्धार्थक के द्वारा कपट-लेख लिखवाता है और अंगुलि मुद्रा के साथ उसे सिद्धार्थक को दे देता है; सिद्धार्थक वध्यस्थान से शकटदास को छुड़ाकर ले जाता है और योजनाबद्ध रीति से भागुरायण-भद्र-भट आदि भी भागकर मलयकेतु के पास चले जाते हैं। ये सभी घटनाएँ एक ही दिन की हैं।

दूसरे अंक में पाटलिपुत्र का वृत्तान्त निवेदित करने आहितुण्डिकश में विराधगुप्त आता है; उधर सिद्धार्थक शकटदास के लेकर उपस्थित होता है और राक्षस एक विक्रेता से तीन आभूषण खरीदता है, यह भी सब एक ही दिन का कार्यजात है।

तीसरे अंक में घटना-चक्र पाटलिपुत्र में घटित होता है। इसमें जो चाणक्य और चन्द्रगुप्त का कृतक कलह दिखाया गया है, वह एक ही दिन की घटना है।

चौथे अंक में राक्षस की करभक और शकटदास से बातचीत होती है और उधर मलयकेतु और भागुरायण उससे मिलने आते हैं। यह सब कुछ एक ही दिन में होता है। यह इस बात से भी सिद्ध होता है कि अंक के प्रारम्भ में राक्षस को शयनगत दिखाया गया है, जो प्रातःकाल सोकर उठा है और अन्त में सूर्यास्त का वर्णन है (अये, अस्ताभिलाषी भगवान्भास्करः पृष्ठ 215)।

पाँचवें अंक में मलयकेतु के कटक में घटनाएँ घटित होती हैं। इसमें गुल्माधिकारियों द्वारा संयत सिद्धार्थक भागुरायण के सम्मुख उपस्थित किया जाता है और उसके साथ भागुरायण की बातचीत होती है। मलयकेतु भी वहीं विद्यमान है। अन्त में राक्षस बुलाया जाता है और उसकी भी इन लोगों से बातचीत होती है। यह भी एक दिन का कृत्य है।

छठे अंक में मलयकेतु द्वारा परित्यक्त राक्षस चन्दनदास का वृत्तान्त जानने के लिए पाटलिपुत्र के निकट स्थित जीर्णोद्यान में आता है और उसकी रज्जुहस्त पुरुष से बातचीत होती है। यह भी सब एक ही दिन में होता है।

अन्त में, सातवें अंक में वध्यस्थान का दृश्य है, जिसमें चन्दनदास, उसका पुत्र और पत्नी, राक्षस, चाणक्य आदि अनेक पात्रों को उपस्थित किया गया है। राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनना स्वीकार करता है और चाणक्य अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर शिखा बाँधता है। यह सब घटनाक्रम एक ही दिन में घटित होता है। नाटक के अन्त में सभी पात्रों का निर्गमन भी होता है। सारी घटनाएँ एक ही मुख्य प्रयोजन से सम्बद्ध हैं। अत: इस प्रकार अंक का जो लक्षण दिया गया है, उसका पूरी तरह से निर्वाह विशाखदत्त ने अपने नाटक में किया है।

मुद्राराक्षस में घटित होने वाली घटनाओं का कोई निश्चित दिन नहीं दिया गया है। हाँ, तीन स्थल ऐसे हैं, जहाँ एक निश्चित तिथि का अनुमान होता है। प्रथम अंक में चन्द्रग्रहण की चर्चा है, जो पूर्णिमा को ही होता है; लेकिन यह किस मास की पूर्णिमा है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। तीसरे अंक में कौमुदी महोत्सव मनाने का उल्लेख है, जो कार्तिकी पूर्णिमा को मनाया जाता था। अत: इस नाटक में सर्वाधिक निश्चित तिथि यही है। पुन: चौथे अंक के अंत में 'पौर्णमासी' का उल्लेख है। उस दिन सेना के प्रस्थान का मुहूर्त निरूपित करते हुए क्षपणक कहता है—'श्रावक, निरूपिता मयाऽऽमध्याह्नान्निवृत्तसर्वकल्याणा तिथि: सम्पूर्णचन्द्रा पौर्णमासी' (पृ० 211-11)। आगे भी इसी तिथि की ओर संकेत करते हुए वह कहता है—'अस्ताभिमुखे सूर्ये उदिते सम्पूर्णमण्डले चन्द्रे' (पृ० 212)।

टीकाकार ढुंढिराज ने इसे मार्गशीर्ष की पूर्णिमा बताया है और यह ठीक भी है; क्योंकि तीसरे अंक में घटित घटना से इस अंक की घटनाओं में एक मास का अन्तर होना चाहिए। दूसरे अंक में राक्षस ने विराधगुप्त को पुन: पाटलिपुत्र भेजा था और कहा था कि तुम वैतालिक स्तनकलश से कह देना कि जब-जब अवसर आये, वह चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध समुत्तेजक श्लोकों से उद्दीप्त करता रहे और कोई गुप्त संदेश हो तो उसे करभक द्वारा प्रेषित करे। वह करभक पाटलिपुत्र से मलयकेतु के राज्य में जहाँ राक्षस रह रहा है, आता है। दोनों स्थानों

के बीच की दूरी सौ योजन है, जैसा कि करभक की इस उक्ति से ज्ञात होता है—

> योजनशतं समधिकं को नाम गतागतमिह करोति ।
> अस्थानगमनगुर्वी प्रभोराज्ञा यदि न भवति ।। (4/1)

प्रो. ध्रुव ने ऐसा ही पाठ माना है, जबकि तेलंग 'योजनशतं समधिकम्' के स्थान पर 'राजनियोगो महीयान्' ऐसा पाठ स्वीकार करते हैं। यदि ध्रुव का पाठ ठीक है तो करभक द्वारा इतनी दूरी तय करने और सेना की तैयारी करने में एक महीने का समय लग सकता है। अत: ढुंढिराज ने ठीक ही चौथे अंक की पूर्णिमा को अगहन की पूर्णिमा बताया है। इसी अंक में मलयकेतु कहता है कि मेरे पिता को मरे हुए दस महीने हो गये हैं (अद्य दशमी मासस्तातस्योपरतस्य, पृ० 190)। इससे यह स्पष्ट होता है कि अगहन से दस माह पहले अर्थात् फाल्गुन के महीने में पर्वतक का वध हुआ होगा, जिसकी चर्चा पहले और दूसरे अंक में है। प्रथम अंक में जिस चन्द्रग्रहण का उल्लेख है, वह फाल्गुनी पूणिमा का है। इसके पूर्व जो कुछ घटित हुआ है अर्थात् नन्द द्वारा चाणक्य का अपमानित होना, चन्द्रगुप्त और पर्वतक की सम्मिलित सेनाओं द्वारा पाटलिपुत्र पर बहुत दिनों तक घेरा पड़ा रहना, सर्वार्थसिद्धि का सुरंगमार्ग से तपोवन चला जाना और वहाँ भी चाणक्य द्वारा उसे मरवा देना, इन सब घटनाओं में लगभग चार महीने का समय लग सकता है। अत: चाणक्य के अपमान की घटना कार्तिकी पूर्णिमा को हुई होगी। चौथे अक में वर्णित पौर्णमासी अगहन की पूर्णिमा है। उसके पश्चात् सेना प्रस्थान करती है और पाटलिपुत्र के निकट पहुँचती है। यह सब कुछ होने में एक माह का समय लग सकता है। तदनन्तर छठे और सातवें अंक की घटनायें तो एक दिन की हैं। पाँचवें अंक के अंत में मलयकेतु द्वारा राक्षस त्याग दिया जाता है। वह पाटलिपुत्र के निकट जीर्णोद्यान में आता है। उधर सिद्धार्थक मलयकेतु-कटक की घटनाओं को बताने पाटलिपुत्र आता है। वह चाणक्य से मिलकर पुन: अपने मित्र समिद्धार्थक से मिलता है और दोनों चाण्डाल-वेश धारण कर चन्दनदास को वध्यस्थान ले जाते हैं। वहाँ उसको मुक्त कराने के लिए राक्षस भी पहुँचता है। उसे हताश होकर चन्द्रगुप्त का सचिव पद स्वीकार करना पड़ता है। ये सारी घटनाएँ दो-चार दिनों से अधिक समय की नहीं हो सकतीं। अत: इसे पौष मास की पौर्णमासी मानना चाहिए। इस प्रकार चाणक्य के अपमान की घटना से उसे पूर्णप्रतिज्ञ होकर शिखा-बन्धन की घटना तक चौदह मास का समय लगा होगा। इस अवधि के दौरान घटित घटनाओं को विशाखदत्त ने

बड़ी सुन्दरता से वर्णित किया है। यह उनकी उत्कृष्ट नाट्य-कला का परिचायक है।

घटनाओं का एक प्रयोजन से अन्वित होना

मुद्राराक्षस में जिन घटनाओं की योजना की गयी है, वे सब एक मुख्य प्रयोजन से अन्वित हैं और वह प्रयोजन है राक्षस का निग्रह। चाणक्य के जितने भी व्यक्ति हैं, वे सभी लक्ष्य-प्राप्ति के प्रति सतत जागरूक हैं। इन पात्रों की विशेषता यह है कि ये कष्ट सहकर भी चाणक्य के कार्य को सम्पादित करते हैं। चाणक्य का मित्र इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण क्षपणक के वेश में घूमता-फिरता है। निपुणक नाम का चर यमपट लिए पाटलिपुत्र में घूमता है। सिद्धार्थक, भागुरायण भद्रभट आदि सभी लोग चाणक्य का अभीष्ट सम्पादन करने के लिए प्रयत्नशील हैं। भागुरायण तो मलयकेतु का इतना प्रिय हो गया है कि वह उसे अपने से एक क्षण के लिए भी दूर रखना नहीं चाहता। ऐसा स्नेहवान् कुमार मलयकेतु भी उसके द्वारा छला जाता है, यह आत्मग्लानि उसके चित्त को सदैव व्यथित करती है है। वह कहता है—

> 'भद्र भासुरक, न मां दूरी भवन्तमिच्छति कुमारः। अतोऽस्मिन्नवा-स्थानमण्डपे न्यस्यतामासनम्।
>
> कष्टमेवमस्मासु स्नेहवान् कुमारो मलयकेतुरतिसन्धातव्य इत्यहो दुष्करम्।' (पृ० 224)

सिद्धार्थक चाणक्य का अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति है। चाणक्य राक्षस की अंगुलि-मुद्रा के साथ कपटलेख, कार्यान्वियन के लिए उसे दे देता है। राक्षस का विश्वास-पात्र बनने के लिए वह शकटदास को वध्यस्थान से छुड़ा कर ले जाता है। रहस्यो-द्घाटन न करने पर भासुरक द्वारा ताड़ित भी किया जाता है और चाणक्य के ही कार्य की सिद्धि के लिए उसे चाण्डाल भी बनना पड़ता है। वह अपने मित्र समिद्धार्थक को भी चाण्डाल बनने के लिए कहता है, ताकि दोनों लोग चन्दनदास को वध्यस्थान मारने के लिए ले जाएँ। चाणक्य के इस आदेश से उसे बड़ा मान-सिक कष्ट होता है, जिसे वह इन शब्दों में व्यक्त करता है—

> किमार्यचाणक्यस्य घातकजनोऽन्यो नास्ति येन वयमीदृशेषु नियोजिता अतिनृशंसेषु। (पृ० 268-69)

इस पर सिद्धार्थक चाणक्य के कठोर आज्ञा-नियोग का स्मरण कराते हुए कहता है कि इस लोक में भला कौन ऐसा व्यक्ति है, जो जीने की कामना करता हुआ चाणक्य की आज्ञा का उल्लंघन करे।

> 'वयस्य, को जीवलोके जीवितुकाम आर्य चाणक्यस्याज्ञप्तिं प्रति

कूलयति । तदेहि । चाण्डालवेषधारिणौ भूत्वा चन्दनदासं वध्यस्थानं नयाव: । (पृ० 269)

इन साधारण पात्रों की तो बात ही क्या, स्वयं चन्द्रगुप्त को चाणक्य के आदेशानुसार ही कृतक कलह करना पड़ता है, जिसका उसे अत्यन्त क्षोभ है । वह अपनी आत्मग्लानि को इस प्रकार व्यक्त करता है—

आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य
बुद्धि: प्रवेष्टुमिव भूविवरे प्रवृत्ता ।
ये सत्यमेव हि गुरूनतिपातयन्ति
तेषां कथ नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा ।। (3/33)

इस प्रकार नाटककार ने जितनी भी घटनाओं की योजना की है, उनका पर्यवसान राक्षसनिग्रह रूपी कर्म में है । चाणक्य के व्यक्ति एक-दूसरे को भी नहीं जानते कि हम लोग चाणक्य के ही व्यक्ति हैं, लेकिन वे सभी चाणक्य के परम प्रयोजन की सिद्धि के लिए सदैव तत्पर रहते हैं । चाणक्य ने जो कुछ किया है, वह इसीलिए कि जैसे भी हो राक्षस का चन्द्रगुप्त के साथ संयोग हो जाए । वह राक्षस से कहता है—

भृत्या भद्रभटादय: स च तथा लेख: सिद्धार्थक—
स्तच्चालङ्करणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्त: किल।
जीर्णोद्यानगत: स चापि पुरुष: क्लेश: स च श्रेष्ठिन :
सर्वं मे वृषलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नय: ।। (7/9)

इस प्रकार नाटकार ने सभी घटनाओं को प्रयत्नपूर्वक एक प्रयोजन से अन्वित किया है । इसे ही यूनानी लेखकों ने 'यूनिटी ऑफ एक्शन' (Unity of Action) कहा है ।

प्रवेशक

नाटक में नीरस और अनुचित कथांश, जिन्हें रंगमञ्च पर दिखाना समीचीन न हो, उन्हें पाँच अर्थोपक्षेपकों द्वारा सूचित किया जाता है । वे हैं··· विष्कम्भ, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अंकावतार । मुद्राराक्षस में इनमें से प्रवेशक द्वारा दो स्थलों पर भूत और भविष्यत् इतिवृत्तांशों को सूचित किया गया है । दशरूपककार धनञ्जय ने विष्कम्भ और प्रवेशक की परिभाषा इस प्रकार की है—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ।।

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।। (1/59,60)

अर्थात् बीते हुए और आगे आनेवाले कथांशों को संक्षेपतः जहां मध्यम-कोटि के पात्रों द्वारा सूचित किया जाता है, वहाँ विष्कम्भ होता है और उसी प्रकार के (भूत और भविष्यत्) कथा-प्रसंगों को जब नीच पात्रों द्वारा अनुदात्त उक्तियों से सूचित किया जाता है, तब प्रवेशक होता है। यह दो अंकों के बीच ही में होता है। अतः पहले अंक में इसका प्रयोग नहीं हो सकता। वहाँ विष्कम्भ का प्रयोग होता है। मुद्राराक्षस में विशाखदत्त ने पाँचवें और छठे अंकों के प्रारम्भ में प्रवेशकों की योजना की है। पाँचवें अंक के प्रवेशक में सिद्धार्थक और क्षपणक की बातचीत है और छठे अंक के प्रवेशक में सिद्धार्थक और समिद्धार्थक का परस्पर वर्तालाप है।

स्वगत कथन और आकाशभाषित

नाटकीय वस्तु का एक दृष्टि से त्रिधा विभाजन किया जाता है—सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य अर्थात् सबके सुनने योग्य, कुछ निश्चित लोगों के द्वारा सुनने योग्य और किसी के भी द्वारा न सुनने योग्य। जो वस्तु किसी के सुनने योग्य नहीं होती, उसे ही 'स्वगत कथन' कहते हैं। विशाखदत्त ने इसकी भी योजना मुद्राराक्षस में प्रायः प्रत्येक अंक में की है। ये स्वगत कथन मुख्यतः प्रथमांक में चाणक्य के, द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और सप्तम में राक्षस के, तृतीय में चन्द्रगुप्त के और पञ्चम में मलयकेतु, भागुरायण और राक्षस के हैं। इन स्वगत कथनों से भी अरुचि नहीं उत्पन्न होती, अपितु वे कथानक के पूरक होने से श्रोता की जिज्ञासा का उपशमन ही करते हैं।

इसी प्रकार नाटक में 'आकाश भाषित' को भी अपनाया जाता है। इसमें एक ही पात्र एक अन्य पात्र की कल्पना कर लेता है और आकाश की ओर देखकर उस काल्पनिक पात्र से बात करता हुआ कहता है—क्या कहते हो? और फिर उसके उत्तर में अपनी बात करता है। इस प्रकार दो पात्रों के स्थान पर एक ही पात्र के द्वारा कार्य-सम्पादन किया जाता है। धनञ्जय ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि बिना पात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ।। (दशरूपक, 1/67)

'मुद्राराक्षस' में इसे दो स्थलों पर दिखाया गया है—द्वितीय अंक के प्रारंभ में आहितुण्डिक द्वारा और तृतीय अंक के प्रारम्भ में कञ्चुकी द्वारा ।

इस प्रकार कोई ऐसा विशेष नाट्यतत्त्व नहीं, जिसकी योजना विशाखदत्त ने अपने नाटक में न की हो । इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि विशाखदत्त एक महान् कवि के साथ-ही-साथ कुशल नाटककार भी हैं । उनके उभय स्वरूप का दर्शन 'मुद्राराक्षस' में होता है ।

मुद्राराक्षस का नाटकीय वैशिष्ट्य

वस्तु-वैशिष्ट्य

संस्कृत नाट्य-साहित्य में मुद्राराक्षस का एक विशिष्ट स्थान है; क्योंकि यही एक ऐसा नाटक है, जो पूर्णतः राजनीति-प्रधान है। नाटक के प्रमुख तत्त्वों वस्तु, नेता और रस की दृष्टि से भी यह वैशिष्ट्ययुक्त है। नाटक का इतिवृत्त प्रायः ऐतिहासिक होने से प्रख्यात कहलाता है। (प्रख्यातमितिहासादेः— दशरूपक 1/15)। मुद्राराक्षस का इतिवृत्त भी मुख्यतः बृहत्कथामूलक होने से ऐतिहासिक है, लेकिन विशाखदत्त ने अपनी विलक्षण नाट्य-प्रतिभा से इसमें बहुत कुछ उत्पाद्य अंश सम्मिलित कर दिया है। अनेक शास्त्रों और विशेष रूप से कौटिलीय अर्थशास्त्र के गम्भीर ज्ञान के कारण विशाखदत्त ने इसमें ऐसी विलक्षणता ला दी है, जो अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ती। चाणक्य और राक्षस इन दो राजनीति-निपुण मुख्य-मन्त्रियों के कूटनीति-पूर्ण क्रिया-कलापों से इस नाटक का विधान अति अद्भुत बन गया है। इन दोनों के बीच में पड़ी हुई राजलक्ष्मी की वही स्थिति है, जो दो मदोन्मत्त हाथियों के बीच में गजवधू की होती है, जैसे वह यह निश्चय नहीं कर पाती कि किसके पास रहे, उसी प्रकार राजलक्ष्मी भी एक निश्चित धारणा नहीं बना पाती कि वह चाणक्य के साथ रहे या राक्षस के साथ। विशाखदत्त इसका वर्णन करते हुए कहते हैं—

तदेवमनयोर्बुद्धिशालिनो : सुसचिवयोर्विरोधे संशयितेव नन्दकुल लक्ष्मीः।

विरुद्धयोर्भृशमिह मन्त्रिमुख्ययो—
र्महावने वनगजयोरिवान्तरे।
अनिश्चयाद्गजवशयेव भीतया
गतागतैर्ध्रुवमिह खिद्यते श्रिया॥ (2/3)

दोनों राजनयविशारदों की कुटिल राजनैतिक चालों से इसका इतिवृत्त इतना जटिल हो जाता है कि उसे सुव्यवस्थित कर उपसंहृत करने में स्वयं नाटककार को क्लेश का अनुभव होता है। विशाखदत्त ने अपनी मनःस्थिति का परिचय इस श्लोक-वाक्य द्वारा कराया है—

कर्त्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा ॥(4/3)

नायक-वैशिष्ट्य

मुद्राराक्षस का नायकगत वैशिष्ट्य भी कुछ कम नहीं है। नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से नायक को प्रख्यातवंश का होना चाहिए और राजर्षि होना चाहिए। इसके साथ ही उसे धीरोदात्त भी होना चाहिए। इन सब लक्षणों के आधार पर टीकाकार ढुंढिराज ने चन्द्रगुप्त को नायक माना है और इसमें हेतु दिया है कि चन्द्रगुप्त का राज्य सचिवायत्तसिद्धि वाला है, अतः वह इस नाटक में अपने पौरुष का आविष्करण नहीं करता है—

सचिवायत्त सिद्धत्वात्पौरुषं स्वमदर्शयन्।
गम्भीरात्मा चन्द्रगुप्तो धीरोदात्तोऽत्र नायकः ॥

लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से चन्द्रगुप्त इस नाटक का नायक नहीं प्रतीत होता; क्योंकि विशाखदत्त ने जैसा इसका चित्रण किया है, उससे वह प्रख्यात वंश का नहीं मालूम पड़ता। चाणक्य उसे प्रायः 'वृषल' शब्द से सम्बोधित करता है, जो शूद्र के लिए प्रयुक्त होता है। इस नाटक में लगभग 41 बार वृषल शब्द का प्रयोग हुआ है[1] और केवल एक स्थल को छोड़कर सर्वत्र चाणक्य उसे चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त करता है। राक्षस छठे अंक के छठे श्लोक में चन्द्रगुप्त को 'वृषल' कहता और उसके हीन जातित्व की ओर संकेत करता हुआ कहता है—

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
गता छिद्रेण श्रीर्वृषलमविनीतेव वृषली ॥ (6/6)

1. मुद्रा, पृ० 63, 65-67, 69, 83, 101, 104, 30, 58, 60-62, 64, 67-70, 72, 74, 75-78, 80, 81, 271. 305, 07, 12

एक अन्य स्थल पर भी राक्षस के कथन से इसी बात की पुष्टि होती है। वह राजलक्ष्मी की अकुलीनता को प्रकट करते हुए कहता है—

अपि च अनभिजाते,

> पृथिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः
> पतिं पापे मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती ॥
> प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला
> पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी ॥ (2/7)

चन्द्रगुप्त का हीनजातित्व उसे मुरा दासी का पुत्र मानने के लिए विवश करता है, जिसे प्रायः लोग स्वीकार करते हैं। ढुंढिराज, जो चन्द्रगुप्त को नायक मानते हैं, स्वयं उसकी अकुलीनता को रेखांकित करते हैं। उनके द्वारा विरचित उपोद्‌घात के निम्न सन्दर्भों से चन्द्रगुप्त का मुरा दासी का पुत्र होना ही सिद्ध होता है—

> राज्ञः पत्नी सुनन्दासीज्ज्येष्ठान्या बृषलात्मजा।
> मुराख्या सा प्रिया भर्तुः शीललावण्यसम्पदा ॥ 28 ॥
> ×   ×   ×
> मुरा प्रासूत तनयं मौर्याख्यं गुणावत्तरम् ॥ 32 ॥

एक तो चन्द्रगुप्त का अकुलीन होना उसके नायकत्व में बाधक है, दूसरे वह धीरोदात्त भी नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि तीसरे अंक में, जहाँ वह सर्वप्रथम रंगमंच पर आता है, उसके कथन से किसी भी प्रकार धीरोदात्तत्व नहीं सूचित होता। वह कहता है—

राज्यं हि नाम, राजधर्मानुवृत्तिपरतन्त्रस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्। कुतः।

> परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता
> परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।
> परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्
> परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः ॥(3/4)

वस्तुतः नायक वह होना चाहिए, जो कथानक का आदि से अन्त तक नयन करे। इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त नायक नहीं हो सकता; क्योंकि वह केवल दो अंकों (3 और 7) में आता है। शेष अंकों में उसका अभाव है। ढुंढिराज ने एक ओर

उसे धीरोदात्त और गंभीरात्मा कहा है और दूसरी ओर उसका राज्य सचिवायत्तसिद्धि का बताया है। यह कथन स्वयं अपने में विरोधी है; क्योंकि नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार सचिवायत्तसिद्धि वाला नायक धीरललित होता है, जैसे वत्सराज उदयन। नाटक के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि विशाखदत्त की दृष्टि में वस्तुतः चाणक्य ही इसका नायक है, क्योंकि वही प्रधान पात्र है। दूसरा प्रधान पात्र राक्षस है, जो उसका प्रतिद्वन्द्वी है। नाटक का प्रारम्भ चाणक्य के ही प्रवेश से होता है। सम्पूर्ण प्रथम और तृतीय अंक में उसी का वर्चस्व है और अन्तिम अंक में उसी की नीति फलदायिनी सिद्ध होती है और चन्द्रगुप्त को राजलक्ष्मी प्राप्त होती है। यद्यपि शेष अंकों में उसकी शारीरिक उपस्थिति नहीं, लेकिन उसके कार्यों की चर्चा सर्वत्र होती है। स्वपक्ष और परपक्ष के सभी पात्र उसकी नीति के प्रति विस्मित रहते हैं। चन्द्रगुप्त और मलयकेतु दोनों राजा चाणक्य और राक्षस की अपेक्षा बहुत गौण हैं। इतिवृत्त का आदि से अन्त तक फलोन्मुख निर्वाह चाणक्य ही करता है। अतः ब्राह्मण होते हुए भी वह नायक कहलाने का अधिकारी है। विशाखदत्त ने नायक के लक्षणों के आधार पर नायक की रूप-रचना नहीं की; अपितु स्वतन्त्र रूप से नायक की सृष्टि की है और वह नायक चाणक्य के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। मुद्राराक्षस का यही नायकगत वैशिष्ट्य है।

रसवैशिष्ट्य

नाटक का प्रमुख तत्त्व रस है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में 'न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' कहकर 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' इस रससूत्र की अवतारणा की है। इसकी व्याख्या में अभिनवगुप्त कहते हैं—'एक एव तावत्परमार्थतो रसः सूत्रस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति।' इससे स्पष्ट है, जैसे माला में सूत्र पिरोया रहता है, उसी प्रकार रस भी नाट्य में सर्वत्र व्याप्त रहता है। यदि नाटक में रस-चर्वणा न हो तो कोई व्यक्ति उसे देखने के लिए नहीं प्रवृत्त होगा। अतः वस्तु, नेता और रस इन तीन नाट्यतत्त्वों में रस का ही प्राधान्य सिद्ध होता है। इसकी अपेक्षा अन्य तत्त्व गौण हैं।

इस आत्मतत्त्व रस की भी दृष्टि से मुद्राराक्षस का वैशिष्ट्य है। प्रत्येक नाटक में एक अंगीरस होता है और शेष रस अंगभूत। धनञ्जय ने नाटक में वीर अथवा शृंगार इन दो में से किसी एक को अंगीरूप में समायोजित करने का विधान बताया है और यह भी कहा कि अन्य रसों की योजना अंगरूप में करनी चाहिए तथा निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का उपनिबन्धन करना चाहिए—

एको रसोऽङ्गीकर्त्तव्यो वीरः शृंगार एव वा ।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।। (दशरूपक, 3/3)

प्रायः संस्कृत नाटकों में इन्हीं दो में एक रस अंगीरूप में उपनिबद्ध देखा जाता है; हाँ, भवभूति का 'उत्तररामचरित' इसका अपवाद है, जिसमें करुण रस अंगीरूप में प्रतिष्ठित है। कालिदास के नाटकों में शृंगार रस प्रधान और भवभूति के 'महावीर चरित' और भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' आदि में वीररस प्रधान है। विशाखदत्त का मुद्राराक्षस भी वीररस प्रधान नाटक है, जैसा कि टीकाकार ढुंढिराज ने भी कहा है—'वीरो रसः प्रधानं स्यान्मुद्राराक्षसनाटके।' वीररस युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर—इन चार रूपों में अभिव्यक्त देखा जाता है। अब प्रश्न यह होता है कि मुद्राराक्षस में इनमें से किस वीररस की योजना हुई है। विचार करने पर प्रतीत होता है कि इनमें से कोई रस मुद्राराक्षस में आयोजित नहीं है। इस नाटक में तो आदि से अन्त तक चाणक्य और राक्षस की कूटनीतियाँ ही प्रपञ्चित की गयी हैं; अतः मुद्राराक्षस के वीररस को 'नीतिवीर' संज्ञा प्रदान करनी चाहिए। स्वपक्ष और परपक्ष के लोग चाणक्य की नीति के प्रति चकित दिखायी पड़ते हैं। चाणक्य का अत्यन्त विश्वस्त गुप्तचर सिद्धार्थक उसकी नीति की सराहना इन शब्दों में करता है—

बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः ।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता ।। (5/1)

अर्थात् बुद्धि जल जिनका निर्झर है, ऐसे देश और कालरूपी कलशों से सींची गयी चाणक्य की नीतिलता राक्षसनिग्रहरूपी गुरु फल दिखायेगी। आगे चलकर भागुरायण भी कहता है—'अहोवैचित्र्यमार्य चाणक्यनीतेः' (पृ० 223)। छठे अंक के प्रारम्भ में सिद्धार्थक फिर कहता है—

जयति जयनकार्यं यावत्कृत्वा च सर्वं
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः ।। (5/1)

अर्थात् विजय की कारणभूत सेना आदि के द्वारा किये जानेवाले सम्पूर्ण कार्य को, जो स्वयं सम्पादित करके शत्रुपक्ष को नष्ट करनेवाली है, ऐसी आर्य चाणक्य की नीति की जय हो। सिद्धार्थक को वह दैवगति के समान प्रतीत होती है (वयस्य, दैवगत्या इव अश्रुतगत्यै नमश्चाणक्यनीत्यै) जैसे विधाता की गति को कोई नहीं जान सकता, उसी प्रकार चाणक्य के नीति-मार्ग को कोई नहीं जान

सकता। औरों को जाने दीजिये, राक्षस ऐसा नीतिकुशल व्यक्ति भी चाणक्य की नीति के प्रति विस्मित होकर कहता है—'अहो दुर्बोधश्चाणक्यबटोर्नीतिमार्गः'।

नीति दो प्रकार की होती है—धर्मनीति और कूटनीति। चाणक्य ने नन्दों का विनाश और राक्षस का निग्रह करने में धर्मनीति को न अपनाकर कूटनीति को अपनाया है, क्योंकि कलियुग में वह सद्यः फलदायिनी होती है! इस प्रकार चाणक्य की कूटनीति से व्याप्त इतिवृत्त वाला मुद्राराक्षस मुख्यतः नीतिवीररस को ही व्यक्त करता है।

अंगभूत रसों में अद्भुत का प्राधान्य है। ढुंढिराज अपने उपोद्घात में इस श्रेष्ठ नाटक को अद्भुत रस से युक्त बताते हैं (अद्भुतरसनयं नाटकवरम्, श्लोक 22)। शृंगार रस का इसमें एक प्रकार से अभाव है; क्योंकि चाणक्य और राक्षस के कूटनीतिपूर्ण क्रियाकलापों में शृंगार आ भी कैसे सकता है। 'वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं कण्ठे विवृत्तानना' (2/12)—यह एक श्लोक ऐसा है, जिसमें शृंगार की झलक दिखायी पड़ती है। उसका परिपोष कराना नाटककार को अभीष्ट नहीं है; तभी इस नाटक में कोई नायिका भी नहीं है। चन्दनदास की पत्नी को छोड़कर कोई दूसरा स्त्री पात्र नहीं है। उसकी अपने प्रियतम के साथ हुई बातचीत में शृंगार की अभिव्यक्ति नहीं होती; अपितु करुण की होती है; क्योंकि उसे चन्दनदास से बातचीत करते हुए वहाँ दिखाया गया है, जहाँ उसका पति चाण्डालों द्वारा वध्यस्थान की ओर ले जाया जाता है। चाण्डालों की इस उक्ति 'आर्यचन्दनदास, निखातः शूलस्तत्सज्जो भव' को सुनकर वह रक्षा के लिए पुकारती है और छाती पीटती है। उधर उसका शिशुपुत्र उससे पूछता है, पिता जी आपके न रहने पर हम क्या करेंगे (तात, किमिदानीं मया तातविरहितेनानुष्ठातव्यम्') इस पर वह कहता है—'पुत्र, चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम्'—अर्थात् तुम वहाँ रहना जहाँ चाणक्य का वास न हो।

इस प्रकार, चन्दनदास के साथ उसकी पत्नी और पुत्र के वार्तालाप में नाटककार ने करुणरस को अभिव्यक्त किया है। करुणरस की ऐसी सुन्दर व्यञ्जना बहुत कम देखने को मिलती है। इस नाटक में हास्यरस का भी कोई स्थान नहीं है; इसलिए इसमें विदूषक भी नहीं है। वैसे हास्यरस प्रायः शृंगार रस प्रधान नाटकों में देखा जाता है; क्योंकि शृंगार से उसकी उत्पत्ति मानी गयी है, जैसा कि भरतमुनि ने कहा है—शृंगाराद्धि भवेद्धास्यः (नाट्यशास्त्र 6/44)। इस नाटक में अंगभूत रसों में रौद्र और वीभत्स को यथास्थान समायोजित किया गया है। रौद्र का स्थायीभाव क्रोध होता है।

चाणक्य क्रोध का मूर्तिमान् रूप है। अतः रौद्ररस की अभिव्यक्ति होना

स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त 'गृध्रैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्घनिष्कम्पपक्षैः' (3/28) इस श्लोक में वीभत्स रस का आस्वाद होता है, क्योंकि इसमें श्मशानभूमि का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है—

नन्दैरानन्दयन्तः पितृवननिलयान् प्राणिनः पश्य चैता—
न्निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः ।।

इस प्रकार नाटक में रस-योजना बड़ी विचित्र हुई है। अतः रस की दृष्टि से भी इसी नाटक का वैशिष्ट्य कुछ कम नहीं है।

इन गुण-गणों से युक्त यह नाटक संस्कृत के श्रेष्ठ नाटकों की पंक्ति में प्रतिष्ठित होने के योग्य है। एक मात्र उपलब्ध नाट्यकृति होते हुए भी यह विशाखदत्त के नाम को आज भी जीवित रखे हैं और सदैव रखता रहेगा। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थितं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ।।[2]

2. सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, निणय सागर प्रेस, बम्बई, 1952, पृ० 32

चरित-चित्रण

विशाखदत्त की नाट्यकला का उत्कर्ष उनके द्वारा सुनियोजित पात्रों के चरित-चित्रण में भी देखा जाता है। मृच्छकटिक को छोड़कर ऐसा कोई अन्य नाटक नही दिखाई पड़ता, जिसमें इतने वैविध्ययुक्त पात्र हों। शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' में जिन पात्रों को लिया है, वे समाज के सभी वर्गों के हैं, लेकिन विशाखदत्त ने जिन पात्रों योजना की है, वे विविध-कार्य करते हुए भी राजपुरुष हैं। वे सभी अपने स्वामी का कार्य-सम्पादन बड़ी निष्ठा से करते हैं। चाणक्य का अनन्यहृदय मित्र इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्राचार्य की दण्डनीति और ज्योतिश्शास्त्र के 64 अंकों में पारंगत है; चाणक्य की कार्य-सिद्धि के लिए क्षपणक वेश में घूमता फिरता है। चाणक्य का एक अत्यन्त विश्वस्त चर सिद्धार्थक चाण्डाल बनने में ज़रा भी संकोच का अनुभव नहीं करता, बल्कि वह स्वामिभक्त को माँ के समान पूज्य मानता है—अस्मादृशजनन्यै प्रणामामः स्वामिभक्त्यै (5/9)। दूसरी ओर विराधगुप्त ऐसे लोग हैं, जो राक्षस का कार्यसम्पादन करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। विराधगुप्त, जो कभी नन्दों का पादपद्मोपजीवी था, सपेरे के वेष में पाटलिपुत्र की सड़कों पर साँपों का खेल दिखाता फिरता है। राक्षस का प्रिय मित्र श्रेष्ठी चन्दनदास उसके पुत्र-कलत्र की रक्षा करने में कारागार का कष्ट भोगता हैं और अन्त में शूली पर चढ़ने के लिए भी तैयार हो जाता है; लेकिन अपने कर्त्तव्य-पथ से ज़रा भी विचलित नहीं होता। ऐसे उज्ज्वल चरित्रवाले पात्र इस नाटक को अलौकिकता प्रदान करते हैं।

विशाखदत्त ने अपनी नाट्यरचनाचातुरी से एक दूसरे के ठीक विपरीत पात्र-युग्मों की सृष्टि की है, जैसे चाणक्य—राक्षस, चन्द्रगुप्त—मलयकेतु, निपुणक—विराधगुप्त इत्यादि। नाटककार इस नाटक के प्रमुख चार पात्रों का विशेष परिचय प्रथम चार अंकों में करा देता है। उदाहरणत: प्रथम में चाणक्य का, द्वितीय

में राक्षस का, तृतीय में चन्द्रगुप्त का और चतुर्थ में मलयकेतु का। इससे विशाखदत्त का नाट्यरचना-कौशल ही विदित होता है। अतः एक ओर जहाँ अन्य नाटकीय गुणों से मुद्राराक्षस श्लाघनीय है, वहाँ दूसरी ओर चरित-चित्रण की दृष्टि से भी वह एक अनुकरणीय नाट्यकृति है। इसमें विविध पात्रों का जैसा चरित-चित्रण हुआ है, उसका विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाता है।

चाणक्य

इस नाटक प्रमुख पात्र चाणक्य है और हमारे विचार से वही नायक कहलाने योग्य है। अत्यद्भुत कूटनीति को प्रपञ्चित करने के उद्देश्य से नाटककार ने चाणक्य जैसे लोकोत्तर पात्र की सृष्टि की है। कौटिलीय अर्थशास्त्र और कामन्दकीय नीतिसार के पढ़ने से चाणक्य का जो स्वरूप बनता है, उसे विशाखदत्त ने अपनी प्रतिभा से और भी विलक्षण रूप में सजाया-सँवारा है, चाणक्य का जो लोकोत्तर चरित विशाखदत्त ने चित्रित किया है, उसकी एक झलक कामन्दकीय नीतिसार के प्रारम्भिक श्लोकों में मिलती है, जो पहले उद्धृत किये गये हैं।[1] अर्थशास्त्र में चाणक्य अपनी प्रबल प्रतिकार-भावना का परिचय इस रूप में कराता है—

> येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
> अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥ (15/1)

अर्थात् जिसने शास्त्र और नन्दों के राज्य का अपने क्रोध से उद्धार किया, उसी कौटिल्य ने इस शास्त्र की रचना की है। चाणक्य के इसी स्वभाव की ओर संकेत विशाखदत्त ने श्लोकार्ध द्वारा किया है—

> कौटिल्यः कुटिलमतिः स एष येन
> क्रोधाग्नौ प्रसभमदाहि नन्दवंशः। (1/7)

चाणक्य के सहज कोपन स्वभाव का चित्रण नाटककार ने आदि से अन्त तक किया है। वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सदैव तत्पर रहता है चाहे; उसके लिए विषकन्या के प्रयोग आदि को भले ही साधन बनाना पड़े। वह साध्य के लिय साधन के औचित्य-अनौचित्य का कोई ध्यान नहीं रखता। तभी

1. नीतिसार, अध्याय 1, श्लोक 2-6

वह नन्दवंश के अन्तिम सम्राट सर्वार्थसिद्धि को, जो तपोवन चला जाता है, वहाँ भी मरवा देता है, ताकि राक्षस निराश्रित हो जाय। चाणक्य की नीति की विशेषता यह है कि लोकगर्हित कार्य करके भी वह निन्दा का पात्र नहीं बनता, अपितु उसका विपक्षी राक्षस बनता है। उदाहरणत: विषकन्या द्वारा चन्द्रगुप्त के आधे राज्य के अधिकारी पर्वतक को वह मरवा देता है और जनापवाद यह फैलाता है कि राक्षस ने हमारे अत्यन्त उपकारक मित्र पर्वतक को विषकन्या द्वारा मरवा दिया है। ऐसा करने से राक्षस, जो प्रजा का बड़ा प्रिय था, लोकनिन्दा और घृणा का भाजन बनता है। राक्षस चाणक्य की इस नीति के प्रति आश्चर्य-चकित होकर कहता है—

साधु कौटिल्य, साधु !
परिहृतमयशः पातितमस्मासु च घातितोऽर्धराज्यहरः।
एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव ॥ (2/19)

राक्षस अपने कार्य की विफलता पर दैव को कोसता है। यही नहीं, अपितु उसके पक्ष के लोग भी असफलता का कारण दैव की प्रतिकूलता को ही मानते हैं; जैसा कि निम्न उक्तियों से चरितार्थ होता है—

विराधगुप्तः—अमात्य, दैवस्यात्र कामचारः किं क्रियताम्।

× × ×

राक्षसः—(सहर्षम्) किं हतो दुरात्मा चन्द्रगुप्तः ?
विराधगुप्तः—अमात्य, दैवान्न हतः। (पृ० 130)

× × ×

राक्षसः—(सोद्वेगम्) कथमत्रापि दैवेनोपहृता वयम्। (पृ० 131)

× × ×

राक्षसः—(सवाष्पम्) विधिविलसितम्।
तस्येदं विपुलं विधेर्विलसितं पुंसां प्रयत्नच्छिदः ॥ (पृ० 255)

× × ×

मलयकेतुः—केन तर्हि व्यापादितस्तातः ?
राक्षसः—दैवमत्र प्रष्टव्यम्। (पृ० 256)

दूसरी ओर चाणक्य है, जो दैव को कुछ नहीं समझता है। चन्द्रगुप्त के यह कहने पर कि नन्दकुल के विद्वेषी दैव ने उनका विनाश किया (नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेन), वह आवेश में आकर करता है—

दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति।

उसे अपनी नीति और बुद्धि पर अपार विश्वास है; तभी वह अपने शिष्य शार्ङ्गरव के यह कहने पर कि भद्रभट आदि पहले ही प्रातःकाल भाग गये, कहता है, सबको जाने दो, केवल मेरी बुद्धि न जाय, जिसमें सैकड़ों सेनाओं से अधिक शक्ति विद्यमान है और जिसकी शक्ति महिमा नन्दों के उन्मूलन में देखी जा चुकी है—

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ।। (1/25)

चाणक्य ने गुप्तचरों की योजना करने में भी अपनी कुशलता का परिचय दिया है। स्वयं उसके पक्ष के गुप्तचर एक दूसरे को नहीं जानते और यह रहस्य चाणक्य अन्त तक खुलने नहीं देता।

उसके गुप्तचर शत्रुपक्ष में जाकर ऐसा भ्रम उत्पन्न कर देते हैं कि शत्रुपक्षीय लोग कुछ भी निश्चय नहीं कर पाते कि क्या करना चाहिए। राक्षस ऐसा कुशल राजनीतिज्ञ भी बुद्धि-व्यामोह से ग्रस्त होकर कहता है—'ममतिस्तर्कारूढा न पश्यति निश्चयम्' (6/20) अर्थात् हमारी बुद्धि तर्क-वितर्क में ग्रस्त होने के कारण किसी निश्चय पर नहीं पहुँच रही है। चाणक्य के प्रणिधि विषम परिस्थितियों में पड़कर भी अपने स्वामी के कार्य को उत्तम रूप में सम्पादित करते हैं। वे इतना सतर्क रहते हैं कि सम्पूर्ण नाटक में उनके क्रिया-कलापों में कोई त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती। तभी एक स्थल पर भागुरायण कहता है—न खल्वनिश्चितार्थमार्यचाणक्यप्रणिधयोऽभिधास्यन्ति (पृ० 250)—अर्थात् चाणक्य के गुप्तचर कभी किसी अनिश्चित बात को नहीं कहेंगे। वे विभिन्न परिस्थितियों में सदैव सजग रहते हैं।

चाणक्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इतना दृढ़मति है कि कोई उसे कर्त्तव्य मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। तभी राक्षस ऐसा घोर प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति भी उसके गुणों की प्रशंसा करने में संकोच का अनुभव नही करता। सप्तम अंक में जब चाण्डाल चाणक्य से कहता है कि यह सब नीति-निपुण आपने किया है, तो वह अपने अहंभाव को त्याग कर कहता है, नही मैंने नहीं, यह सब तो नन्दकुल के विद्वेषी दैव ने किया है। चाणक्य के मुख से ऐसा सुनकर राक्षस आश्चर्य-चकित होकर कहता है—'अयं दुरात्मा अथवा महात्मा कौटिल्यः।'

आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः ।
गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम् ॥ (7/7)

इससे अधिक चाणक्य के चारित्र्योत्कर्ष का वर्णन और क्या हो सकता है कि उसका प्रतिस्पर्धी राक्षस भी उसके गुणों की प्रशसा करता है।

राक्षस

विशाखदत्त ने नवनवतिकोटीश्वर नन्दों के स्वामिभक्त अमात्य राक्षस का चरित इतनी उत्तमता से चित्रित किया है कि वह सहृदय सामाजिकों की निखिल सहानुभूति का भाजन बनता है । चाणक्य को भलीभाँति ज्ञात है कि उसके विरोध में रहते हुए चन्द्रगुप्त पाटलिपुत्र के सिंहासन पर कभी भी शान्तिपूर्वक नहीं बैठ सकता; अतएव चाणक्य उसका निग्रह करवाना चाहता है। चाणक्य उसके गुणों पर मुग्ध है । उसे वह मन्त्रियों में बृहस्पति के समान दिखायी पड़ता है—'साधु अमात्य राक्षस, साधु । साधु श्रोत्रिय साधु । मन्त्रि बृहस्पते, साधु ।' (पृ० 66)

प्राय: लोक में ऐसा देखा जाता है कि जो ऐश्वर्ययुक्त स्वामी की सेवा करते हैं, वे धन के लोभ में करते हैं और जो विपत्ति में उसका साथ देते हैं, वे उसके पुनः प्रतिष्ठित होने की आशा से । परन्तु स्वामी के प्रलयंगत हो जाने पर भी उसके सुकर्मों के प्रति आसक्त होकर निःसंगभाव से जो कार्यभार का वहन करते हैं, ऐसे मनुष्य संसार में दुर्लभ हैं।[2] राक्षस एक ऐसा ही दुर्लभ व्यक्ति है, जो नन्दों के सान्वय विनष्ट हो जाने पर भी उनके विगत वैभव को पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए सतत चेष्टावान है। ऐसे स्वामिभक्त व्यक्ति को चाणक्य चन्द्रगुप्त का महामन्त्री बनाना चाहता है, ताकि चन्द्रगुप्त का राज्य सदा के लिए स्थिर रह सके । राक्षस में प्रज्ञा है, विक्रम है और भक्ति (स्वामिभक्ति) है। जिस किसी में ये तीनों गुण विद्यमान हों, वही वस्तुतः सुभृत्य कहलाने का अधिकारी है और इनसे रहित व्यक्ति क्या सुख, क्या दुःख सभी अवस्थाओं में कलत्रत्व परिपोषणीय होता है।[3] राक्षस की प्रज्ञा अथवा राजनीति-प्रज्ञा का दर्शन द्वितीय अंक में होता है, जहाँ विराधगुप्त पाटलिपुत्र का वृत्तान्त निवेदित करता है, जो उसने राक्षस के पाटलिपुत्र से निकल जाने के बाद आँखों से देखा है । चन्द्रगुप्त को मारने के लिए उसने जो योजनाएँ बनायी थीं, वे निश्चित ही सफल होतीं, यदि चाणक्य जैसा कुशल राजनीतिज्ञ व्यक्ति चन्द्रगुप्त की रक्षा के लिए पदे

2. मुद्रा 9. 1/14
3. वही, 1/15

सावधान न रहता। वह केवल बुद्धिमान् राजनीति-निपुण व्यक्ति ही नहीं, अपितु वीर भी है। जैसे ही विराधगुप्त उससे चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर की सम्मिलित सेनाओं द्वारा पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने की बात करता है, उसका अदम्य उत्साह जागृत हो उठता है और वह शस्त्र खींच कर कह उठता है—

> 'मेरे रहते हुए भला कौन पाटलिपुत्र पर घेरा डाल सकता है' (मयि स्थिते कः कुसुमपुरमुपरोत्स्यति) वह प्रवीरक नामक अपने एक सैनिक को सम्बोधित करके कहता है—'प्रवीरक! शीघ्र ही प्राकार के चारों ओर धनुर्धारियों को चढ़ा दिया जाय और द्वारों पर शत्रु के हाथियों का भेदन करने में समर्थ अपने हाथियों को खड़ा कर दिया जाय तथा मृत्यु का भय छोड़कर शत्रु की दुर्बल सेना पर प्रहार करने की इच्छा से वे लोग एकचित्त होकर मेरे साथ निकल आवें, जिनको अपना यश प्यारा हो।'

यह कितनी वीरत्व-व्यञ्जक उक्ति है। पाटलिपुत्र अथवा कुसुमपुर जो उसके स्वामी नन्दों की राजधानी थी, उसके जीते जी शत्रुओं से घिर जाये, यह वह कैसे सहन कर सकता है। ऐसे अवसर पर वह पाटलिपुत्र की प्राचीर के अन्दर बन्द नहीं रहना चाहता अपितु बाहर निकल कर अपने शूरभटों के साथ शत्रु की सेना पर टूट पड़ना चाहता है। उसे अपने प्राणों का मोह नहीं, वह तो तो समरांगण मे अपने प्राणों की आहुति देकर नन्दों की विगत प्रतिष्ठा को पुनः प्रतिष्ठापित करना चहता है। वह शत्रु का वध कर असने दिवंगत स्वामी की आराधना करना चाहता है (देवः स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति—2/5)।

राक्षस कितना वीर है, यह तो उसके स्वामी नन्द जानते थे; क्योंकि जब कभी पाटलिपुत्र पर उपरोध का अवसर उपस्थित होता था तो वह यही कहते थे कि शत्रु की गजसेना की बाढ़ को रोकने के लिए राक्षस जाये और चञ्चल अश्व-सेना का निवारण करने के लिए भी राक्षस जाये, शत्रु की पदाति-सेना का विनाश भी राक्षस करे। इस प्रकार प्रीतिवश वह विविध आदेश देकर ऐसा मानते थे, मानो पाटलिपुत्र में एक नहीं सहस्रों राक्षस रह रहे हैं :

अज्ञासीः प्रीतियोगात् स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम्॥ (2/14)

इसके अतिरिक्त राक्षस के अप्रतिम शूरत्व की झलक वहाँ देखने को मिलती हैं; जहाँ सेना की व्यूह-रचना कर वह पाटलिपुत्र पर आक्रमण करना चाहता है। वह इतना वीर है कि खस और मगध सैनिकों के साथ वह सेना के आगे-आगे चलना चाहता है—

प्रस्थातव्यं पुरस्तात् खसमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यैः। (5/11)

---

4. मुद्रा०, 2/13

छठे अंक में रज्जुहस्त पुरुष से यह सुनकर कि चन्दनदास को शूली पर चढ़ानेके लिए चण्डालों द्वारा वध्यस्थान ले जाया जा रहा है, वह वीरत्व के आवेश में कह उठता है कि पौरुष के महान् मित्र इस खड्ग से मैं चन्दनदास के प्राणों की रक्षा करूँगा (नन्वनेन व्यवसायमहासुहृदा निस्त्रिंशेन—पृ० 287)।

इस प्रकार राक्षस में अपार पौरुष का दर्शन होता है; उसके साथ ही उसमें अटूट स्वामिभक्ति भी है; क्योंकि वह यह नहीं देख सकता कि जिस सिंहासन को उसके स्वामी नन्द अलंकृत करते थे, उस पर अनभिजात चन्द्रगुप्त बैठे। तभी वह राजलक्ष्मी को कोसता है—'अयि अकुलीने! क्या पृथ्वी पर सभी विख्यातवंश वाले राजा दग्ध हो गये थे कि तूने इस कुलहीन मौर्य का पतिरूप में वरण किया है। इसमें तेरा क्या दोष! स्त्रियों की बुद्धि कास-पुष्प के अग्रभाग की भाँति ही चञ्चल होती है, उसे पुरुष के गुणों की कोई पहिचान नहीं होती।"[5]

दूसरे अंक में सिद्धार्थक शकटदास को वध्यस्थान से छुड़ाकर जब राक्षस के पास ले जाता है, उस समय शकटदास उसे पृथ्वी के स्वामिभक्त लोगों के आदर्श-रूप में देखता है, जिसकी स्वामिभक्ति नन्दों के विनष्ट हो जाने पर भी पूर्ववत् बनी हुई है—

> अक्षीणभक्तिः क्षीणेऽपि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन्
> पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः॥ (2/22)

राक्षस के अपने ही व्यक्ति नहीं, अपितु उसका महान् प्रतिद्वन्द्वी चाणक्य भी उसकी स्वामिभक्ति के प्रति मुग्ध है। वह कहता है—

> 'अहो राक्षस नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स खलु कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। (पृ० 65)
> राक्षसोऽपि स्वामिनि स्थिरानुरागत्वात्सुचिरमेकत्र वासाच्च शीलज्ञानां नन्दानुरक्तानां प्रकृतीनामत्यन्तविश्वास्यः प्रज्ञापुरुषकाराभ्यामुपेतः।' (पृ० 175)

इस प्रकार राक्षस में प्रज्ञा, विक्रम और स्वामिभक्ति—ये तीनों गुण आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए चाणक्य उसे वश में करना चाहता है, ताकि वह

5. मुद्रा. 2/7

जैसे भी हो चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनना स्वीकार कर ले। चाणक्य का समस्त नीति-जाल इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए फैलाया गया है।

राक्षस को प्रजा का असीम स्नेह प्राप्त है। इस प्रजा-प्रेम की सूचना नाटककार ने छठे अंक में दी है, जब वह जीर्णोद्यान में प्रवेश कर कहता है कि नन्दों के जीवित रहते हुए जब मैं कभी पाटलिपुत्र से बाहर निकलता था, तो सहस्रों लोगों से घिरा हुआ राजा के समान चलता था और पुरवासी अपनी उंगलियों से नवोदित चन्द्र के समान मेरी ओर संकेत करते थे कि यह देखो राक्षस जा रहा है लेकिन आज मैं विफल श्रम होकर त्रासवश इस जीर्णोद्यान में उसी तरह प्रवेश कर रहा हूँ, जैसे भय के मारे एक चोर प्रवेश करता है—

> पौरैरङ्गुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमानः शनै-
> र्यो राजेव पुरा पुरान्निरगमं राज्ञां सहस्रैर्वृतः।
> भूयः सम्प्रति सोऽहमेव नगरे तत्रैव वन्ध्यश्रमो।
> जीर्णोद्यानकमेष तस्कर इव त्रासाद्विशामि द्रुतम्॥ (6/10)

राक्षस प्रजा का स्नेहभाजन तो है ही, इसके अतिरिक्त वह एक आदर्श मित्र भी है। वह अपने मित्र के लिए प्राणोत्सर्ग करने में भी किञ्चित्मात्र हिचकिचाता नहीं। पाटलिपुत्र का मणिकार श्रेष्ठि उसका मित्र है। मित्र ही नहीं, वह तो उसका दूसरा हृदय है, तभी पाटलिपुत्र को छोड़ते समय उसने अपनी पत्नी और पुत्र को उसके घर में रख दिया था। निपुणक नामक चर से इस वृत्तान्त को सुनकर चाणक्य कहता है—

> नूनं सुहृत्तमः। न ह्यनात्मसदृशेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति। (पृ० 78)

छठे अंक में जब रज्जुहस्त पुरुष से सुनता है कि चाण्डाल चन्दनदास को वध्य-स्थान ले जा रहे हैं, तो वह अकेले ही खड्ग हाथ से लेकर अपने मित्र की रक्षा के लिए चल देता है। पुनः जब उसे मालूम पड़ता है कि इस प्रकार शस्त्रपाणि जाने से चन्दनदास का वध शीघ्र हो जाएगा; तो वह शस्त्र को त्यागकर अपने प्राणों के विनिमय से छुड़ाना चाहता है। वह कहता है—

> औदासीन्यं न युक्तं प्रिय सुहृदि गते मत्कृते चातिघोरां
> व्यापत्तिं ज्ञातमस्य स्वतनुमहमिमां निष्क्रयं कल्पयामि॥ (6/21)

और वह ऐसा ही करता है। वह न चाहते हुए भी अपने मित्र के प्राणों की रक्षा के लिए चन्द्रगुप्त का सचिव बनना स्वीकार करता है। उसके अलौकिक गुण

के कारण चाणक्य-जैसा अभिमानी व्यक्ति भी आकर प्रणाम करता है—'भो अमात्य राक्षस ! विष्णुगुप्तोऽहमभिवादये'। (पृ० 306)

राक्षस में सभी मानवीय गुण विद्यमान है। एक ओर जहाँ चाणक्य में वैयक्तिक माया-ममता का को कोई स्थान नहीं है, वहाँ राक्षस में सब कुछ है। वह अपने दुर्भाग्य को कोसता है; नन्दों के विनाश पर रोता है और अपनी असफलता को विधि का दुर्विलसित मानता है। वह विराधगुप्त को आहितुण्डिक वेश में देखकर दुःखी होकर कहता है—अये देवपादपद्मोपजीवनोऽवस्थेयम् (पृ० 121) और रोने लगता है। वैद्य अभयदत्त के मरने पर वह शोक प्रकट करता हुआ कहता है—अहो महान् विज्ञानराशिरूपरत: (पृ० 130)। वह किसी भी कार्य को करने में शीघ्रता नहीं करता, अपितु बहुत सोच-विचार करता है। पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए जहाँ मलयकेतु त्वरा दिखलाता है, वहाँ वह शुभ मुहूर्त्त जानने के लिए क्षपणक से विचार-विमर्श करता है। सब कुछ करने पर भी जब सफलता नहीं मिलती तो वह इसे विधि का विधान मानता है। वह भाग्यवादी है, चाणक्य की भाँति वह दैव को चुनौती नहीं देता। अपने मित्र चन्दनदास को छुड़ाने के लिए जब वह पाटलिपुत्र की उपकण्ठभूमि में जाता है, तो अपने स्वामी की याद आती है और आँखों में आँसू भरकर चारों ओर देखता हुआ कहता है कि यह वही भूमि है, जो कभी देवनन्द के पाद-विक्षेप से पवित्र होती रहती थी—''एतास्ता देवपादक्रमण परिचयपवित्रीकृततला: कुसुमपुरोपकण्ठभूमय: ।' (पृ० 273)

संक्षेप में, राक्षस में सभी मनुष्योचित गुण विद्यमान हैं, तभी वह अपने स्वामी का प्रिय है, भृत्यों का प्रिय है, मित्रों का प्रिय है और सम्पूर्ण प्रजा का प्रिय है तथा अन्त में मुदाराक्षस नाटक के दर्शकों का प्रिय और प्रेमभाजन है। राक्षस का ऐसा चारित्र्योत्कर्ष-वर्णन विशाखदत्त की चरित-चित्रण-कला का चूड़ान्त निदर्शन है।

चन्द्रगुप्त

चाणक्य और राक्षस की भाँति विशाखदत्त ने एक दूसरे के ठीक विपरीत दो अन्य पात्रों की योजना की है, चन्द्रगुप्त और मलयकेतु। ये दोनों राजा हैं और क्रमश: चाणक्य तथा राक्षस के प्रीतिभाजन हैं। चन्द्रगुप्त को कुछ लोग नाटक का नायक मानते हैं, क्योंकि वही फलभोक्ता है, राज्यश्री उसे ही प्राप्त होती है; लेकिन विशाखदत्त ने जैसा उसका चित्रण किया है, उससे वह नाटक का गौण पात्र प्रतीत होता है। प्रधान पात्र तो चाणक्य और राक्षस हैं और उन्हें ही नायक और प्रतिनायक के रूप में स्वीकार करना चाहिए। चन्द्रगुप्त तीसरे अंक में रंगमंच पर उपस्थित होता है और वह चाणक्य का आज्ञानुवर्ती होने

से पराधीनता का अनुभव करता है। वह कहता है कि पराधीन व्यक्ति भला सुख का भोग कैसे कर सकता है (परायत: प्रीते: कथमिव रसंवेत्तु पुरुष:—3/4)। राजलक्ष्मी उसे वाराङ्गना के समान दुराराध्या मालूम पड़ती है। लेकिन चन्द्रगुप्त का एक महान् गुण है—चाणक्य के प्रति उसकी शिष्यवत् अनन्यनिष्ठा। वह अपनी बुद्धि को आर्य चाणक्य के द्वारा संस्क्रियमाण होने में गौरव का अनुभव करता है। स्वप्न में भी वह चाणक्य के विरुद्ध आचरण करने की चेष्टा नहीं करता। अत: जब चाणक्य उसे कृतक कलह कर कुछ काल तक स्वतन्त्र रूप से राजकार्य करने को कहता है, तो उसे यह आदेश पातक के समान लगता है—

> 'अन्यच्च । कृतक कलहं कृत्वा स्वतन्त्रेण किंचित्कालान्तरं व्यवहर्त्तव्यमित्यादिश: । स च कथमपि मया पातकमिवाभ्युपगत: ।'
> (पृ० 150)

चाणक्य के प्रति उसका सम्मान-भाव सर्वत्र नाटक में देखा जाता है। चाणक्य के आते ही वह सिंहासन से उठ खड़ा होता है और उसे प्रणाम करता हुआ पैरों पर गिर पड़ता है—इस सम्मान से चाणक्य आह्लादित हो उठता है और चन्द्रगुप्त को हाथ पकड़ कर उठाता है एवं ऐसा आशीर्वाद देता है, जो संस्कृत-साहित्य में दुर्लभ है—

> आ शैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरनदीशीकरासारशीता-
> त्तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य ।
> आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतै:शश्वदेव क्रियन्तां
> चूडारत्नांशुगर्भास्तवचरण युगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागा : ।। (3/19)

> अर्थात् शिलाखण्डों पर गिरती हुई गंगा के जलकणों की वर्षा से जो शीत होता रहता है, ऐसे हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र जिसमें अनेक वर्णों की मणियों की कान्ति चमकती रहती है—के तट तक के सैकड़ों राजा आ आ और भय से नत शिर होकर अपने चूड़ारत्नों की किरणों से तुम्हारे दोनों चरणों की उंगलियों के रन्ध्रभाग को सदा रञ्जित करते रहें।

चाणक्य का यह आशीर्वाद उसके लिए अमूल्य निधि है। वह कहता है कि आपकी कृपा से यह सब मैं अनुभव कर रहा हूँ—'आर्यप्रसादादनुभूयते एव सर्वम्' (पृ० 162)।

विशाखदत्त ने चाणक्य और चन्द्रगुप्त के बीच मन्त्री और राजा का नहीं अपितु गुरु-शिष्य भाव को प्रतिष्ठित किया है। चाणक्य उसे शिष्यवत् मानता

है (यद्येवं तर्हि विज्ञापनीयानामवश्यं शिष्येण स्वैररुचयो न निरोद्धव्या—पृ० 163) और चन्द्रगुप्त उसे गुरुवत्। तभी चन्द्रगुप्त तृतीय अंक के अन्त में कहता हैं कि मैंने आर्य चाणक्य की आज्ञा से ही कृतक कलह करके मर्यादा का उल्लंघन किया है, तो भी ऐसी ग्लानि हो रही है कि मेरी बुद्धि पृथ्वी के विवर में समा जाय। जो लोग सचमुच गुरु का असम्मान करते हैं, भला लज्जाउनके हृदय को क्या नहीं विदीर्ण कर देती—

आर्याज्ञयैव मम लङ्घितगौरवस्य
बुद्धिः प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रवृत्ता।
ये सत्यमेव हि गुरूनतिपातयन्ति
तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा ।। (3/33)

इसी भाव का दर्शन सातवें अंक में भी होता है, जहाँ पुनः चन्द्रगुप्त रगमच पर आता है। वह आकर बड़ी ही विनम्रतासे चाणक्य के निकट जाकर कहता है—आर्य, चन्द्रगुप्तः प्रणमति। इस पर चाणक्य गुरुवत उसे आशीर्वाद देता है—सम्पन्नास्ते सर्वाशिषः (पृ० 308)। उसके इन गुणों के ही कारण राक्षस उसे द्रव्य और मलयकेतु को अद्रव्य कहता हैं (7/14) चन्द्रगुप्त की विनम्रता आज्ञाकारिता आदि के कारण चाणक्य उसे पाटलिपुत्र के सिंहासन पर आसीन करा देता है और राक्षस के साथ मैत्री करा कर उसका राजपद सदा के लिए स्थिर कर देता है। चन्द्रगुप्त कृतकृत्य होकर चाणक्य के प्रति अनुगृहीत होकर कहया है—

राक्षसेन समं मैत्री राज्ये चारोपिता वयम्।
नन्दाश्चोन्मूलिताः सर्वे किं कर्त्तव्यमतः प्रियम् ।। (7/18)

मलयकेतु

विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त के ठीक विपरीत मलयकेतु का चरित-चित्रण किया है। वह एक म्लेच्छ राजा है और मूर्ख एवं अदूरदर्शी है। राक्षस जैसे शुभ-चिन्तक व्यक्ति को भी वह आशंका की दृष्टि से देखता है कि कहीं वह चन्द्रगुप्त से मिलने की योजना तो नहीं बना रहा है। मलयकेतु स्वयं कुछ भी सोचने में असमर्थ है; उसकी बुद्धि तो चाणक्य के विश्वस्त व्यक्ति भागुरायण द्वारा परिचालित होती है। यद्यपि उसमें प्रतिकार की भावना प्रबल है क्यों कि उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि पिता के मारे जाने से मेरी माताओं की जो दुर-वस्था है, वहीं मैं शत्रु की स्त्रियों की कर दूंगा, तभी मैं अपने दिवंगत पिता को

जलाञ्जलि दूँगा[6]; लेकिन अपनी अयोग्यता और मूर्खतावश वह कुछ नहीं कर पाता। भागुरायण और सिद्धार्थक द्वारा वह इस प्रकार छला जाता है कि वह राक्षस के प्रति भी शंकालु हो उठता है। वह क्षपणक जीवसिद्धि की बातों पर विश्वास करके यह मान बैठता है कि हमारे पिता को चाणक्य ने नहीं, अपितु राक्षस ने मन्त्रिपद के लोभ में विषकन्या द्वारा मरवाया है। राक्षस को मलयकेतु की मूर्खता पर बड़ा दुःख होता है। वह कहता है कि उस म्लेच्छ ने यह नहीं सोचा कि जो अपने स्वामी नन्दों के समूल नष्ट हो जाने पर अभी भी उनके प्रति स्वामिभक्त है, वह (राक्षस) शरीर से अक्षत रहते हुए भला उनके शत्रुओं के साथ कैसे सन्धि करेगा। वह कुछ सोच भी नहीं पाता क्योंकि दुर्भाग्य से ग्रस्त लोगों की बुद्धि पहले ही उलट जाती है।[7] उसकी मूर्खता पराकाष्ठा पर उस समय पहुँचती है, जब वह चाणक्य के कपट-लेख पर विश्वास कर चित्रवर्मा आदि पाँचों राजाओं को मरवा देता है, जो अपनी सेना लेकर उसकी सहायता के लिए आये थे। अन्त में वह राक्षस का भी परित्याग कर देता है और कहता है—

'राक्षस, राक्षस, नाहं विश्रम्भघाती राक्षसः। मलयकेतुः खल्वहम्। तद्गच्छ। समाश्रीयतां सर्वात्मना चन्द्रगुप्तः।"

नाटक में मलयकेतु की मूर्खता सर्वत्र परिलक्षित होती है। युद्धक्षेत्र में भी उसे परिस्थिति की गम्भीरता का आभास नहीं होता और वह पीछे से चुपचाप जाकर भागुरायण की आँखें मूदने का खेल खेलता है। वह प्रतीहारी से कहता है—

'विजये ! मुहूर्तमसञ्चारा सव यावदस्य पराङ्मुखस्यैव पाणिभ्यां नयने पिदधामि।'[8]

मलयकेतु प्रत्येक कार्य बिना सोचे विचारे करता है। पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने में वह यह नहीं सोचता कि कैसे व्यूह-रचना कर आक्रमण किया जाए। वह समझ बैठता है कि अब तो हमारी गजसेना अपनी सूँडों में पानी भर कर शोण नदी को सुखा डालेगी और पाटलिपुत्र को घेरकर अपनी सूँडों में भरे हुए पानी को नगर पर इस प्रकार बरसायेगी, जैसे मेघमाला विन्ध्यपर्वत पर मूसलाधार वृष्टि करती है।[9] अन्त में उसका वही हाल होता है जो अदूरदर्शी और मूर्ख राजाओं का होता है। चाणक्य के लोगों, भागुरायण एवं भद्रभट आदि द्वारा वह पकड़ा जाता है और पाटलिपुत्र भेज दिया जाता है। उसका जीवन चाणक्य की कृपा पर निर्भर होता है। पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठने का उसका मनोरथ सदा के लिए अस्त हो जाता है।

---

6. मुद्राराक्षस, 4/5; 7. मुद्राराक्षस, 6/8; 8. मुद्राराक्षस, पृ० 226
9. मुद्राराक्षस, 4/17

लघुपात्र

उपर्युक्त चार मुख्य पात्रों के अतिरिक्त विशाखदत्त ने दोनों पक्षों के लघु पात्रों की भी योजना मुद्राराक्षस में की है और वहाँ भी एक-दूसरे के ठीक विपरीत चरित्र वाले पात्रों को रखा है। उदाहरणत: इधर चाणक्य के पक्ष मे साङ्गंरव है, तो उधर राक्षस के पक्ष में प्रियंवदक। इधर निपुणक नाम का चर है, तो उधर आहितुण्डक विराधगुप्त। पुन: इस ओर जीवसिद्धि क्षपणक ऐसा चाणक्य का सहपाठी मित्र है, तो दूसरी ओर चन्दनदास ऐसा राक्षस का अभिन्न हृदय मित्र। इधर सिद्धार्थक है, तो उधर शकटदास। इस प्रकार लघु पात्रों की भी योजना नाटककार ने बड़ी ही कुशलता से की है। चाणक्यपक्षीय लघुपात्रों में सिद्धार्थक, भागुरायण, क्षपणक निपुणक और शाङ्गरव वर्णनीय हैं और राक्षसपक्षीय पात्रों में पुत्र-कलत्र के साथ चन्दनदास, शकटदास विराधगुप्त और प्रियंवदक। यहाँ पहले चाणक्य के पक्ष के और तदनन्तर राक्षस के पक्ष के पात्रों का चरित-चित्रण किया जाता है—

सिद्धार्थक

चाणक्य का यह अत्यन्त विश्वस्त गुप्तचर है। इसी के द्वारा वह शकटदास से कपट लेख लिखवाता हैं और यही शकटदास को वध्यस्थान से छुड़ाकर राक्षस के पास पहुँचाता है। चाणक्य का विश्वासपात्र होने के कारण ही वह इससे कहता है—

'भद्र कस्मिन्श्चिदाप्तजनानुष्ठेये कर्मणि त्वां व्यापारयितुमिच्छामि।'
(पृ० 86)

इसके पश्चात् चाणक्य जैसा कहता है, ठीक उसी प्रकार वह उसके कार्य को सम्पादित करता है। चाणक्य के कथनानुसार वह शकटदास को राक्षस के पास पहुँचाकर उसका विश्वास-पात्र बन जाता है और उससे पारितोषिकरूप में वह आभूषण प्राप्त करता है, जो मलयकेतु ने अपने शरीर से उतार कर राक्षस को पहनने के लिए भेजा था। जब मलयकेतु की सेना पाटलिपुत्र के निकट पहुँचती है, तो सिद्धार्थक चाणक्य के महान् प्रयोजन को सिद्ध करता है। वह भागुरायण के आदेशानुसार भासुरक नामक परिजन से प्रताड़ित भी होता है, फिर भी ऐसा ही कुछ कहता है, जिससे मलयकेतु राक्षस के प्रति शंकालु हो जाता है। यहीं वह कपटलेख का भी रहस्योद्घाटन करता है, जिससे मलयकेतु के अन्दर यह विचार बद्धमूल हो जाता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त से इस सिद्धार्थक के माध्यम से मिलना चाहता है और उसे मरवा देना चाहता है। मलयकेतु के अन्दर इस

प्रकार के विचारों का बीजारोपण करने में सिद्धार्थक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अन्तिम अंक में वही चाण्डाल का वेष धारण कर चन्दनदास को वध्यस्थान ले जाता है। उसे अपने स्वामी का कार्य करने में तनिक भी संकोच नहीं होता, चाहे उसे राजपुरुष से चाण्डाल ही क्यों न बनना पड़े। वह स्वामिभक्ति को माँ के समान पूज्य मानता हुआ कहता है—

आनयन्त्यै गुणेषु दोषेषु पराङ्मुखं कुर्वत्यै।
अस्मादृशजनन्यै प्रणमामः स्वामिभक्त्यै ।। (5/9)

चाणक्य के प्रतिद्वन्द्वी राक्षस का निग्रह कराने में सिद्धार्थक का बहुत बड़ा योगदान है। उसकी इस महत्ता के कारण ही नाटककार ने उसे पाँच अंकों (1, 2, 5, 6, 7) में रखा है। राक्षस को छोड़कर कोई भी पात्र इतने अंकों में नहीं आता। विशाखदत्त ने उसे बड़ी निपुणता से अपने नाटक में चित्रित किया है। वह चाणक्य के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा और स्वामिभक्ति से वह स्थान प्राप्त करता है, जो अन्य लघु पात्रों के लिए दुर्लभ है।

भागुरायण

भागुरायण भी सिद्धार्थक की भाँति चाणक्य का बड़ा ही विश्वस्त व्यक्ति है। मलयकेतु को राक्षस से विमुख करने में भागुरायण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह सेनापति सिंहबल का छोटा भाई है और चाणक्य के प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रथम अंक में आक्रमण कर मलयकेतु के पास जाकर उसका स्नेहभाजन बन जाता है। उसके बिना मलयकेतु एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकता, यह बात वह भासुरक से कहता है—'भद्र भासुरक, न मां दूरीभवन्तमिच्छति कुमारः। अतोऽस्मिन्नेवास्थानमण्डपे न्यस्यतामासनम्'। (पृ० 224)

भागुरायण में सभी मानवीय गुण हैं। इसलिए यह सोचकर उसे बड़े क्लेश का अनुभव होता है कि वह अपने प्रति इतना स्नेह रखने वाले मलयकेतु के साथ छल कर रहा है—'कष्टमेवमप्यस्मासु स्नेहवान्कुमारो मलयकेतुरतिसन्धातव्य इत्यहो दुष्करम्' (पृ० 224)।

मलयकेतु की विवेकशून्यता का लाभ उठाकर वह जैसा चाहता है, उसे मोड़ देता है। वह मलयकेतु से इस प्रकार बात करता है जिससे मलयकेतु के अन्तर में राक्षस के प्रति अविश्वास पैदा हो जाता है और वह सोचने लगता है कि कहीं राक्षस चुपके-चुपके चन्द्रगुप्त से मिलकर उसका मन्त्रिपद प्राप्त करना तो नही चाहता। बहुत सोचने-विचारने पर भी जो बात मलयकेतु की समझ में नहीं आती, उसे भागुरायण यह कहकर आसानी से समझा देता है—'कुमार, न दुर्बोधोऽय-

मर्थः, (पृ० 193) और मलयकेतु उसे ठीक समझ लेता है।(युज्यते—पृ०194)। मलयकेतु को जब क्षपणक जीवसिद्धि से यह ज्ञात होता है कि उसके पिता को राक्षस ने विषकन्या के प्रयोग से मरवाया है, ऐसी स्थिति में भावावेश में कहीं मलयकेतु राक्षस को न मरवा दे, वह चाणक्य के इस आदेश का स्मरण कर 'रक्षणीया राक्षसस्य प्राणाः' (पृ० 232) उसको प्रकृतिस्थ करता हुआ कहता है—'कुमार, अलमावेगेन। आसनस्थं कुमारं किञ्चिद् विज्ञापयितु मिच्छामि' (पृ० 232)। मलयकेतु कुछ शान्त होकर बैठ जाता है और कहता है—'सखे किमसि वस्तुकामः' (पृ० 232)। पञ्चम अंक की समाप्ति पर स्वपक्ष से हीन मलयकेतु को भद्रभटादि द्वारा पकड़वाने में वह शीघ्रता करवाता हुआ कहता है—'कुमार, कृते कालहरणेन साम्प्रतं कुसुमपुरोपरोधायाज्ञप्यन्तामस्मद्बलानि (पृ० 258)

इस प्रकार मलयकेतु को राक्षस से पृथक् कर भद्रभट आदि द्वारा पकड़वाने में भागुरायण का बड़ा ही योगदान है। वह अत्यन्त प्रत्युत्पन्नमति, दूरदर्शी और नीतिनिपुण है। परिस्थिति के अनुसार घटनाओं को मोड़ने में वह अत्यधिक चतुर है। उसकी राजनैतिक चातुरी नाटक में स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ती है।

क्षपणक

जीवसिद्धि क्षपणक चाणक्य का सहपाठी मित्र इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण है जो ज्योतिष के चौंसठ अंकों में पारंगत है। चाणक्य ने जैसे ही नन्दवंश के विनाश की प्रतिज्ञा की थी, वैसे ही इसे क्षपणक के वेष में पाटलिपुत्र में लाकर नन्द के अमात्यों के साथ मैत्री स्थापित करवा दी थी और उन्हें नहीं मालूम था कि यह चाणक्य का व्यक्ति है। राक्षस के साथ इसकी अत्यधिक मित्रता थी और लोग इसे राक्षस का अन्तरंग मित्र मानते थे। पाँचवें अंक के प्रारम्भ में सिद्धार्थक से उसकी बातचीत होती है और वह जब मलयकेतु के कटक से पाटलिपुत्र जाने के लिए मुद्रा लेने भागुरायण के पास जाता है, तो उसे देखते ही भागुरायण कहता है—'अये राक्षसस्य मित्रं जीवसिद्धिः; (पृ० 227)। पुनः क्षपणक के साथ उसकी बातचीत होती है, उसी बातचीत में वह कहता है कि राक्षस ने ही मेरे द्वारा विषकन्या से पर्वतक को मरवाया है। यह बात मलयकेतु भी सुन लेता है और क्षपणक कृतार्थ हो जाता है, 'अये, श्रुतं मलयकेतुहतकेन। हन्त कृतार्थोऽस्मि' —(पृ० 231)। ऐसा कहकर वह चला जाता है। तत्पश्चात् रंगमंच पर उसका दर्शन नहीं होता है, लेकिन उसने पर्वतक के मारे जाने का जो रहस्योद्घाटन किया है, उसी को यथार्थ मान मलयकेतु राक्षस को हमेशा के लिए त्याग देता है। इस प्रकार मलयकेतु और राक्षस में फूट डालने में क्षपणक का बहुत बड़ा हाथ है। यह वस्तुतः जैन संन्यासी के वेष में घूमता था. लेकिन कुछ लोग उसे बौद्ध संन्यासी भी मानते हैं।

निपुणक

इसका दर्शन केवल प्रथम अंक में होता है। यह चाणक्य का गुप्तचर है, जिसे उसने पाटलिपुत्र में यह जानने के लिए भेजा है कि कौन लोग चन्द्रगुप्त के प्रति अनुरक्त हैं और कौन विरक्त। वह यमपट लिए हुए पाटलिपुत्र में घूमता है और कौन विरक्त। वह यमपट लिए हुए पाटलिपुत्र मे घूमता है और पता लगाता है कि चन्दनदास के घर में राक्षस के पुत्र-कलत्र रह रहे हैं। इतना ही नहीं, वह राक्षस की पत्नी के हाथ से गिरी हुई राक्षसनामांकित अंगुलिमुद्रा भी लाकर चाणक्य को देता है; जिसे देखते ही भविष्य की सारी योजनाएँ चाणक्य के मस्तिष्क में घूम जाती हैं और वह और वह सहसा कह उठता है—'ननु वक्तव्यं राक्षस एव राक्षस एव अस्मदङ्गुलिप्रणयी संवृत्तः' (पृ० 78)। इस प्रकार वह राक्षस की 'अंगुलिमुद्रा' लाकर चाणक्य का महान् प्रयोजन सिद्ध करता है, क्योंकि इसी मुद्रा द्वारा ही राक्षस का निग्रह होता है। इस नाटक में यह लघुपात्र होते हुए भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

शाङ्र्गरव

यह चाणक्य का बड़ा ही आज्ञाकारी शिष्य है और अपने गुरु के प्रति इसकी अत्वधिक श्रद्धा है। जब यमपट लिए हुए निपुणक आता है और पूछता है कि यह किसका घर है, तो वह बड़े गर्व से कहता है—'अस्माकमुपाध्यायस्य सुगृहीत-नाम्न आर्यचाणक्यस्य' अर्थात् यह हमारे प्रातः स्मरणीय गुरु आर्य चाणक्य का घर है। पुनः चर के यह कहने पर कि मैं तुम्हारे गुरु को धर्म का उपदेश दूँगा, वह अत्यन्त रुष्ट होकर कहता है कि मूर्ख, क्या तू हमारे उपाध्याय से अपने को अधिक धर्मवेत्ता समझता है ('धिङ्मूर्ख, किं भवानस्मदुपाध्यायादपि धर्मवित्तर')। पुनः उसके यह कहने पर कि सभी लोग सब कुछ नहीं जानते; कुछ तुम्हारे उपाध्याय जानते हैं और कुछ हमारे जैसे लोग भी जानते हैं, शाङ्र्गरव कुपित होकर कहता है—'मूर्ख, सर्वज्ञतामुपाध्यायस्य चोरयितुमिच्छसि' अर्थात् 'अरे मूर्ख, तू हमारे गुरु की सर्वज्ञता को चुराना चाहता है। इस प्रकार एक गुरु का जैसा अच्छा शिष्य होना चाहिए, वैसा ही शाङ्र्गरव है। वह बुद्धिमान है, आज्ञाकारी है और चाणक्य ऐसे सहज कोपन व्यक्ति का रूखा व्यवहार भी उसे उद्विग्न नही करता। इस प्रकार नाटककार ने बड़ी ही निपुणता से शाङ्र्गरव जैसे लघु पात्र का भी श्लाघनीय चरित-चित्रण किया है।

चन्दनदास : उसकी पत्नी और पुत्र

राक्षसपक्षीय पात्रों मे सबसे उज्ज्वल और अनुकरणीय चरित चन्दनदास का

है। पाटलिपुत्र का मणिकार श्रेष्ठी है और राक्षस का सुहृत्तम है, तभी राक्षस ने उसके घर में अपनी पत्नी और पुत्र को छोड़कर पाटलिपुत्र से अपक्रमण किया था। निपुणक नामक चाणक्य का चर उसे अमात्य राक्षस का दूसरा हृदय कहता है—

> 'तृतीयोऽपि अमात्य राक्षसस्य द्वितीयमिव हृदयं पुष्पपुरनिवासी मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम। मस्यगेहेकलत्रं न्यासीकृत्य अमात्यराक्षसो नगरादपक्रान्तः।' (पृ० 77)

उसके सुहृत्तमत्व को चाणक्य भी स्वीकार करता है—

> 'नूनं सुहृत्तमः। न ह्यनात्मसदृदेशेपुराक्षसः कलत्रं न्यासी करिष्यति।' (पृ० 78)

निपुणक से अंगुलिमुद्रा प्राप्त करने का वृत्तान्त सुनकर चाणक्य को यह निश्चय हो जाता है कि चन्दनदास के घर में ही राक्षस की पत्नी और पुत्र रह रहे हैं। वह बुलाया जाता है और चाणक्य राक्षस के गृहजन को समर्पित करने के लिए उसे लोभ दिखाता है—

> 'तत्क्रियतां पथ्यं सुहृद्वचः। समर्प्यतां राक्षसगृहजनः। अनुभूयतां गिरं विचित्रो राजप्रसादः।' (पृ० 99)

जब चन्दनदास इस लोभ के प्रति आकृष्ट नहीं होता, तो चाणक्य उसे भय दिखाता हुआ कहता है—

> 'भोः श्रेष्ठिन् एवमयं राजापथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो न मर्षयिष्यति राक्षसकलत्रं प्रच्छादानं भवतः। तद्रक्ष परकलत्रेणात्मनः कलत्रं जीवितं च।' (पृ०० 99)

इस प्रकार चन्दनदास बिना भयभीत हुए अविचलभाव से कहता है—'आर्य किं मे भयं दर्शयसि। सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि किं पुनरसन्तम्, (पृ० 99)। यह वाक्य उसके चरित्र में दिव्यता ला देता है। पुनः चाणक्य रोष में आकर कहता है—'चन्दनदास, एष ते निश्चयः' (पृ० 99) और उसके उत्तर में चन्दनदास कहता है—'बाढमेष धीरो मे निश्चयः' (पृ० 99)।

चन्दनदास का चरित कितना उदात्त है, इस बातचीत से इसकी सूचना मिल जाती है। चाणक्य भी गुणग्राहक है। वह मन ही मन उसके गुणों की प्रशंसा करते हुए कहता हैं—चन्दनदास तुम धन्य हो। परकीय वस्तु के समर्पण में अर्थ-लाभ होते हुए भी इस प्रकार का दुष्कर कार्य राजा शिबि के अतिरिक्त भला और कौन कर सकता है?

'साधु चन्दनदास साधु ।
सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जने ।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिबिना विना ।।' (1/23)

इसी भाव का अनुवदन सातवें अंक में राक्षस भी करता है। वह कहता है कि दुष्टों को रुचिकर लगने वाले इस पापी कलिकाल में इस चन्दनदास ने अपने प्राणों से दूसरों की रक्षा करने में राज शिबि के भी यज्ञ को अति लघुता को प्राप्त करा दिया है—

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षता
नीतं येन यशस्विनाऽतिलघुतामौशीनरीयं यशः ।। (7/5)

चन्दनदास चाणक्य के कोप का भाजन बनता है। वह पत्नी और पुत्र के साथ बन्धनागार में डाल दिया जाता है। उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन ली जाती है और उसके लिए मृत्युदण्ड का विधान होता है; तब भी वह हिमालयवत् अडिग रहता है ओर कहता हैं—'दिष्ट्या, मित्रकार्येण में विनाशो न पुरुषदोषेण' (पृ० 101)

सातवें अंक में एक बार फिर चन्दनदास के दर्शन होते हैं, जब वह चाण्डाल-वेषधारी सिद्धार्थक और समिद्धार्थक द्वारा वध्यस्थान ले जाया जाता है। मृत्यु का भय और पत्नी और पुत्र के वियोग का दुःख उसे विचलित नहीं कर पाता। वह अपनी विषण्ण पत्नी को सान्त्वना देता हुआ कहता है—'आर्ये, अयं मित्रकार्येण में विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण। तदलं विषादेन'। वध्यस्थान में उसे शूली पर चढ़ाने के लिए जब चाण्डाल ले जाते हैं, तो उसकी पत्नी और पुत्र उसका अनुगमन करते हैं। यहाँ नाटककार ने उसकी पत्नी और पुत्र का भी बड़ा की उज्ज्वल चरित निरूपित किया जाता है। वह अपनी पत्नी से पूछता है कि तुमने क्या निश्चय किया है? इस पर वह यही कहती है कि मैं तो आपके चरणों का अनुगमन करूँगी। पुनः चन्दनदास कहता है कि नहीं, ऐसा न करो अपितु जीवित रहकर इस पुत्र की रक्षा करो, जिसने अभी संसार देखा नहीं है। इस पर वह पुनः कहती है कि इस पर कृपा तो प्रसन्न देवता करेंगे। भाव यह है कि वह एक आर्य-ललना की भाँति अपने पति के दिवंगत होने पर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना उचित समझती है। अतः विशाखदत्त ने चन्दन की पत्नी का एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में चरित-चित्रण किया है। नाटककार ने एक वाक्य द्वारा चन्दनदास के चरित को भी दिव्यता प्रदान की है। चन्दनदास अपने पुत्र को सान्त्वना देता हुआ कहता है—'तात, मैं मित्र-कार्य को करता हुआ उस विनाश का अनुभव कर रहा

हूँ।' इस पर पुत्र कहता है— 'तात, किमिदानीं भणितव्यम्। कुलधर्मः खल्वेषोऽस्माकम्' अर्थात्, क्या यह भी कोई कहने की बात है; यह तो हमारा कुलधर्म है। यह वाक्य ही उस छोटे बालक के चरित को उज्ज्वल बना देता है।

इस प्रकार चन्दनदास का पूरा परिवार कर्त्तव्य-परायण है। नाटककार ने अत्युत्तम रूप में सभी का चरित निरूपित किया है। चन्दनदास का परिवार एक आदर्श भारतीय परिवार का स्मरण करा देता है।

शकटदास

शकटदास राक्षस का मित्र है, जिसको उसने पाटलिपुत्र में महान कोष के साथ इस अभिप्राय से रखा है कि शत्रु में फूट डालने और चन्द्रगुप्त को मरवाने में जो भी धन-व्यय करना पड़े, वह करे। उसमें विवेक का अभाव है, तभी वह सिद्धार्थक द्वारा कपट लेख लिखाये जाने पर बिना सोचे-विचारे लिख देता है। शकटदास द्वारा लिखित उस लेख से मलयकेतु को यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि राक्षस चुपके-चुपके चन्द्रगुप्त से मिलकर हमें मरवा देना चाहता है। शकटदास द्वारा लिखित इस लेख का नाटकीय घटनाचक्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। शत्रुपक्ष का व्यक्ति होने से उसे शूली पर चढ़ाने का आदेश होता है, लेकिन चाणक्य की योजनानुसार सिद्धार्थक उसे वध्यस्थान से ले जाकर राक्षस के यहाँ पहुँचा देता है। सिद्धार्थक इससे पहले से ही अपनी मैत्री स्थापित कर लेता है। शकटदास को ले जाने से सिद्धार्थक भी राक्षस का विश्वासभाजन बनता है और अन्ततोगत्वा चाणक्य के कार्य का सम्पादन करता है। कपटलेख को शकटदास के हस्ताक्षरों में लिखा देखकर उसके प्रति राक्षस का अविश्वास बढ़ जाता है, लेकिन जब अन्त में चाणक्य कहता है कि मैंने ही वह कपट लेख सिद्धार्थक के द्वारा शकटदास से बिना उसकी जानकारी के लिखवाया था, तो उसके प्रति राक्षस का सन्देह दूर हो जाता है और वह प्रसन्न होकर कनता है—'दिष्टया शकटदास प्रत्यपनीतो विकल्पः।' इस प्रकार छोटा पात्र होते हुए भी नाटक में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

विराधगुप्त

विराधगुप्त कभी नन्दों के निकट रहने वाला व्यक्ति था, लेकिन वह राक्षस के कार्य के लिए सपेरे के वेष में पाटलिपुत्र में घूमता है और राक्षस से उसके अपक्रमण पश्चात् का सारा घटनाचक्र निवेदित करता है। उसके वर्णन करने की शैली बड़ी ही प्रभावपूर्ण है। उसके संवाद लम्बे होते हुए भी कुतूहलजनक हैं, अतः उन्हें सुनकर भी दर्शकों के चित्त में अरुचि नही उत्पन्न होती। वह केवल दूसरे अंक में रंगमंच पर आता है और एक-एक करके राक्षस की विफलताओं का वर्णन करता है। नाटककार ने इस पात्र की योजना निपुणक के ठीक विपरीत रूप

में की है। वह नगर में यमपट लिए हुए घूमता था, तो यह साँपों का पिटारा लिए हुए। इसे राक्षस के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नही जान पाता कि वह राक्षस का गुप्तचर है। इसने चर का कार्य सुन्दर रूप में कर अपनी सुपात्रता सिद्ध कर दी है।

प्रियंवदक

यह राक्षस का भृत्य है, लेकिन उसका वैसा ही कुछ कार्य है, जैसा चाणक्य के शिष्य शार्ङ्गरव का। निपुणक नामक गुप्तचर से शार्ङ्गरव की बातचीत होती है, तो इधर प्रियंवदक की राक्षस के गुप्तचर विराधगुप्त से। शार्ङ्गरव निपुणक को सहसा प्रवेश नहीं करने देता। उसके वार्त्तालाप को सुनकर चाणक्य स्वयं उसे आने की अनुमति दे देता है (भद्र, विश्रब्धं प्रविश। लप्स्यसे श्रोतारं ज्ञातारं च), लेकिन प्रियंवदक अपनी बुद्धि से बिना कुछ सोचे जैसा विराधगुप्त कहता है, वैसा ही राक्षस से निवेदित करता है।[10]

दोनों की बातचीत से ऐसा प्रतीत होता है कि शार्ङ्गरव जितना अधिक बुद्धिमान है, यह उतना ही मूर्ख है।

इस प्रकार नाटककार विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में चरित-चित्रण कर अपनी नाट्यकला को अत्युत्तम रूप में अभिव्यक्त किया है।

10. द्रष्टव्य मुद्रा०, पृ० 117-118

विशाखदत्तकालीन मानव-समाज

कोई भी कृति अपने काल की दर्पण रूप होती है, क्योंकि उस समय का मनाव-समाज उसमें भलीभाँति प्रतिबिम्बित दिखायी पड़ता है। विशाखदत्त का मुद्राराक्षस भी ऐसा ही है, जिसमें उस समय की सामाजिक स्थिति का सम्यक दर्शन होता है। उस काल में वर्णाश्रमधर्म का क्या स्वरूप था, स्त्रियों की क्या दशा थी, लोगों की वेषभूषा क्या थी, वे कौन-कौन अलंकार धारण करते थे, उनके मनोरञ्जन के साधन क्या थे और बड़ों के प्रति अभिवादन का क्या नियम था, इत्यादि बातो की जानकारी हमें मुद्राराक्षस के पढ़ने से होती है। इस दृष्टि से भी मुद्राराक्षस की महत्ता सिद्ध होती है।

वर्णव्यवस्था

वैदिक काल से हमारा मानव-समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर अवलम्बित रहा है। 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्' (ऋ० 10/90/12; यजु० 31/11) इस मन्त्र को विद्वानों ने वर्णव्यवस्था का मूलस्रोत माना है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णो की उत्पत्ति बतायी गयी है; इससे इस व्यवस्था की वेदमूलकता सिद्ध होती है। मुद्राराक्षस में यद्यपि चारों वर्णों के क्रिया-कलापों का स्पष्टः उल्लेख नहीं है, लेकिन वर्ण-व्यवस्था की झलक अवश्य ही देखने को मिल जाती है। नाटक की प्रस्तावना में ब्राह्मण के लिए 'तत्रभवान्' एवं 'भगवान्' आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है, इससे उनके प्रति पूज्यभाव व्यक्त होता है। इस प्रकार का आदरभाव ब्राह्मणों के प्रति वैदिक काल से था, जैसा कि निम्न सन्दर्भो से प्रतीत होता है।

ब्राह्मणो वै सर्वा देवता: (तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/4/4/2,4)
अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणा: (षड्विंशब्राह्मण 1/1)

विशाखदत्त के समय में गुणवान् ब्राह्मण संभवतः अधिक सम्माननीय थे, तभी चाणक्य पर्वतेश्वर द्वारा धारित आभूषणों को गुणवान् ब्राह्मणों को देने को कहता है और यह भी कहता है कि उनके गुणों की परीक्षा कर हम उन्हें स्वयं भेजेंगे—

> 'किन्तु पर्वतेश्वरेण धृतपूर्वाणि गुणवन्ति भूषणानि गुणवद्भ्य एव प्रतिपादनीयानि। तदहं स्वयमेव परीक्षितगुणान् ब्राह्मणान् प्रेषयामि।' (पृ० 83)

चाणक्य, विश्वावसु प्रभृति तीनों भाइयों को चन्द्रगुप्त से आभूषण लेने भेजता है। ये ब्राह्मण ही हैं। इसके अतिरिक्त चाणक्य और राक्षस दोनों मन्त्री और क्षपणक जीवसिद्धि, ये सभी ब्राह्मण हैं। यद्यपि अध्ययन- अध्यापन ही ब्राह्मणों का मुख्य कार्य था, लेकिन अवसर पड़ने पर ये अन्य कार्यों को भी अपना सकते थे। इस नाटक में ये दोनों मन्त्री शस्त्र-ग्रहण करनेवाले दिखाये गये हैं। उदाहरणतः—

1. 'सोऽहमिदानीमवसितप्रतिज्ञाभारोऽपि वृषलापेक्षया या शस्त्रं धारयामि।' (पृ०65)।
2. 'वृषल, वृषल अलमुत्तरोत्तरेण। यद्यस्मत्तो गरीयान् राक्षसोऽवगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम्।' (पृ० 181)

इन सदर्भों में चाणक्य के शस्त्रग्रहण का उल्लेख है। राक्षस का शस्त्र अर्थात् खड्ग तो सर्वविदित ही है। वह जैसे ही विराधगुप्त के मुख से पाटलिपुत्र पर घेरा पड़ने का वृत्तान्त सुनता है, उसका पौरुष जाग पड़ता है और वह शस्त्र खींचकर कहता है कि मेरे जीवित रहते भला कौन पाटलिपुत्र पर घेरा डाल सकता है—(शस्त्रमाकृष्य, ससंभ्रमम्) अयि, मयि स्थिते कः कुसुरपुरमुपरोत्स्पयति। छठे अंक में राक्षस अपने खड्ग को पौरुष का महान् सुहृत् मानता है—(खड्गमाकृष्य) 'नन्वनेन व्यवसायमहा सुहृदा' निस्त्रिंशेन'—उसे विश्वास है कि वह इसी खड्ग से चन्दनदास को मरने से बचायेग। राक्षस ही नहीं, अपितु नन्दों के जो वक्रनास आदि अन्य मन्त्री थे, वे भी ब्राह्मण थे। उनमें राक्षस, दण्डनीति में परम प्रवीण, राजनीति के षड्गुणों का ज्ञाता, शुचि और शूरतम था। वही नन्दों के राज्य की धुरी का वहन करता था। ऐसा टीकाकार ढुंढिराज ने मुद्राराक्षस के उपोद्घात में कहा है—

> वक्रनासादयस्तस्य कुलामात्या द्विजातयः।
> बभूवुस्तेषु विख्यातो राक्षसो नाम भूसुरः॥
> दण्डनीतिप्रवीणः स षाड्गुण्यप्रविभागवित्।
> शुचिः शूरतमो नन्दैर्मान्यो राजधुरामधात्॥

चन्द्रगुप्त नन्द का पुत्र होने से क्षत्रिय ही था; यद्यपि मुरा दासी से उत्पन्न होने के कारण वह अभिजात नहीं कहा जा सकता। इस नाटक में वर्णित कुलूत-देशाधिपति चित्रवर्मा, मलयनरपति सिंहनाद जो मनुष्यों में सिंह कहा गया है, कश्मीर का राजा पुष्कराक्ष, सिन्धुदेश का राजा सिन्धुषेण और पारसीकाधिराज मेघ, ये वस्तुत: क्षत्रिय ही थे, लेकिन आर्य संस्कारों से रहित होने के कारण म्लेच्छ कहे गये हैं। इनके नाम इन्हें हिन्दू-राजा सिद्ध करते हैं और चित्रवर्मा, सिंहनाद, नृसिंह आदि शब्दों से इनका क्षत्रियत्व ध्वनित होता है।

उस समय के समाज में वैश्यों की भीं स्थिति थी। मणिकार श्रेष्ठी चन्दनदास जिसे अनेकश: वणिक् कहा गया है, वैश्य ही होगा। पहले अंक में चाणक्य उसे कहता है—

1. दुरात्मन्, तिष्ठ दुष्टवणिक् अनुभूयतां तर्हि नरपति क्रोध:। (पृ० 100)
2. शीघ्रमयं दुष्टवणिक् निगृह्यताम्। (पृ० 100)

छठे अंक में राक्षस भी उसके लिए वणिक् शब्द का प्रयोग करता है—

'कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिक्त्वेऽपि वणिज:।' (6/17)

मुद्राराक्षस में स्पष्टत: शूद्र शब्द का उल्लेख नहीं है, लेकिन चन्द्रगुप्त के लिए 'वृषल' और राजलक्ष्मी के लिए 'वृषली' शब्द का प्रयोग हुआ है—

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
गता छिद्रेण श्रीर्वृषलमविनीतेव वृषली ।। (6/6)

कोष में 'वृषल' शूद्र का पर्याय माना गया है—'शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजा:' (अमरकोष 2/10/1)। मुद्राराक्षस में अन्य जातियों का भी उल्लेख है, जिनकी गणना शूद्रों में होती थी। इनके मूल पुरुष क्षत्रिय थे, लेकिन वे धार्मिक क्रियाओं के लोप तथा ब्राह्मणों के अदर्शन अर्थात् उनका सत्संग न होने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गये थे। इन जातियों में ही काम्बोज, यवन, शक, चीन, किरात एवं खश आदि हैं, जिनका उल्लेख मुद्राराक्षस में हुआ है। मनुस्मृति में कहा गया है—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा: क्षत्रियजातय:।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ।।
पौण्ड्काश्चोड्द्रविड्डा: काम्बोजा यवना: शका:।
पारदापह्लवाश्चीना: किराता दरदा: खशा: ।। 10/43, 44

इन चारों वर्णों के अतिरिक्त अन्य व्यावसायिक लोगों की भी चर्चा मुद्राराक्षस में हैं, जैसे कायस्थ, सूत्रधार, शिल्पी, कुलाल, सपेरा, व्याध आदि। लेकिन इनके विषय में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग व्यवसायी थे अथवा उस समय जातिरूप में परिणत हो गये थे।

आश्रम-व्यवस्था

मुद्राराक्षस में यद्यपि आश्रम-व्यवस्था का स्पष्टतः उल्लेख नहीं है, लेकिन यत्र तत्र सन्दर्भों में इस व्यवस्था पर प्रकाश अवश्य पड़ता है। चाणक्य और शार्ङ्गरव के गुरुशिष्यवत् सम्बन्ध और उनके बीच हुए संवादों में ब्रह्मचर्याश्रम की झलक मिलती है। तीसरे अंक में चन्द्रगुप्त के कंचुकी वैहीनरि ने जो चाणक्य के घर का चित्र खींचा है कि एक ओर गोमयों का तोड़ने के लिए पत्थर का टुकड़ा पड़ा है और दूसरी ओर ब्रह्मारियों द्वारा लाये हुए कुशों का ढेर लगा है, छत पर सूखी समिधाएँ पड़ी हैं—(3/15) इससे ब्रह्मचर्याश्रमस्थ एक वटु के गृह का ही दर्शन होता है। चाणक्य स्वयं वटु है। राक्षस उसके लिए व्यंग्यात्मक रूप में अनेक बार 'वटु' शब्द का प्रयोग करता है। जैसे —

1. सखे, कुतश्चाणक्य वटोः परितोषः। (पृ० 12)
2. नियतमतिधूर्तेन चाणक्यवटुना। (पृ० 127)
3. शठः खल्वसौ वटुः (पृ० 130)
4. क्रूरस्य चाणक्यवटो विरुद्धमयुक्तमनुष्ठितं तेन। (पृ० 135)

गृहस्थाश्रम की सत्ता तो सदैव भारतीय समाज में रही है और आज भी है। गृहस्थ-जीवन का मूल था कुल या कुटुम्ब। नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार और नटी की बातचीत में कौटुम्बिक जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। सूत्रधार नटी के लिए कुटुम्बिनी शब्द का प्रयोग करता है ('भवतु, कुटुम्बिनीमाहूय पृच्छामि', पृ० 54) और उसे त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम—की साधिका कहता है (साधिके त्रिवर्गस्य-1/5)। सूत्रधार नटी के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग करता है, उनसे प्रतीत होता है कि उस समय कुटुम्ब में पत्नी सम्मानजनक स्थान था—

> गुणवत्युपायनिलये स्थितिहेतोः साधिके त्रिवर्गस्य।
> मद्भवननीतिविद्ये कार्याचार्ये द्रुतमुपेहि॥ (1/5)

इससे यह भी आभास होता है कि उस समय गृहस्थ जीवन बड़ा सुखमय था और पति-पत्नी एक दूसरे को यथोचित सम्मान देते थे। पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का दर्शन राक्षस और उसकी पत्नी के परस्पर व्यवहार में होता है,

जब राक्षस पाटलिपुत्र छोड़ते समय प्रेम की निशानी के रूप में स्वनामांकित अंगुलिमुद्रा अपनी पत्नी को देता है—'सत्यं नगरान्निष्क्रामतो मम हस्ताद् ब्राह्मण्य उत्कण्ठाविनोदनार्थं गृहीता।' (पृ० 140)

इसी प्रकार एक आदर्श गृहस्थ जीवन की झाँकी चन्दनदास और उसकी पत्नी तथा पुत्र के वार्तालाप में देखने को मिलती है। वह चाण्डालों द्वारा वध्यस्थान ले जाया जाता हुआ अपनी पत्नी से कहता है, हे कुटुम्बिनि! तुम पुत्र के साथ लौट जाओ, हमारा अनुगमन करना ठीक नहीं'। इस पर पत्नी कहती है—'आर्य! आप परलोक को जा रहे हैं, विदेश नहीं; अतः हमें आपका अनुगमन करना चाहिए। आपके चरणों का अनुगमन करने से हमें आत्मानुग्रह होगा।' वह पुत्र से अपने पिता को प्रणाम करने के लिए कहती है, और वह वैसा ही करता है। इससे एक आदर्श कौटुम्बिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है, जिसमें पत्नी का पति के प्रति और पुत्र का पिता के प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसकी जानकारी होती है।

वानप्रस्थ आश्रम का मुद्राराक्षस में कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है कि लोग संसार से उद्विग्न होकर वनों में चले जाते थे जैसा कि सर्वार्थ-सिद्धि के आचरण से ज्ञात होता है. जो पाटलिपुत्र पर घेरा पड़ने पर पुरवासियों पर होने वाले अत्याचारों को देखने में अपने को असमर्थ पाकर तपोवन चला गया गया—('तस्यामप्वस्थायां पौरजनापेक्षया सुरंगामुपेत्यापक्रान्ते तपोवनाय देवे सर्वार्थसिद्धौ'। (पृ० 123-24)। इसके स्पष्ट होता है कि उस समय तपोवन थे, जिनमें लोग संसार से विरक्त होकर तप करने और शान्ति-लाभ करने चले जाते थे। राक्षस भी अपनी योजनाओं के असफल होने पर तपोवन जाने की सोचता है, लेकिन वह यह जानता है कि वहाँ उसके चित्त को शान्ति नहीं मिलेगी; क्योंकि उसमें तो वैरभाव भरा है—'किं गच्छामि तपोवनं न तपसा शम्येत्सवैरं मनः'—5/24)।

क्षपणक जीवसिद्धि को संन्यासी रूप में देखकर संन्यास-आश्रम का भी अनुमान होता है। इस प्रकार विशाखदत्त के समय में वर्णाश्रम-व्यवस्था का दर्शन होता है।

स्त्रियों की दशा

मुद्राराक्षस में स्त्री की विविध अवस्थाओं का निरूपण किया गया है। वह कन्या है, युवति है, नववधू है, दयिता है और कुटुम्बिनी है। स्त्री के गृहिणी रूप के प्रति बड़ा सम्मान व्यक्त किया गया है। वह सुशीलता एवं गृह्यकार्यदक्षता आदि गुणों से युक्त है; गृहस्थिति के हेतुभूत त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की साधिका है; गृहनीति की जानकार है और गृह कार्यों की आचार्य है।[1] नारी के प्रति

1. मुद्रा० 1/5

यह सम्मान प्रदर्शित करने में हो सकता है कि विशाखदत्त के मस्तिष्क में मनुस्मृति के ये श्लोक रहे हों—

यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया: ।।
सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।। 3/56,60

विवाह के पश्चात् कुलवधुएँ किस प्रकार धीरे-धीरे जाकर श्वसुर आदि गुरुजनों को प्रणाम करती थीं, यह राक्षस की अंगुलिमुद्रा के वृत्तान्त से ज्ञात होता है, जो राक्षस की पत्नी की अंगुलि से प्रच्युत होकर लुढ़कती हुई निपुणक नामक गुप्तचर के निकट कुलवधू के समान आकर रुक जाती है।[2] कुलीन घरों की स्त्रियाँ संभवत: घर से बाहर कम निकलती थीं, जैसा कि चन्दनदास के घर में रहती हुई राक्षस की पत्नी के प्रति विशाखदत्त की इस उक्ति से प्रतीत होता है—

'तत ईषद्द्वारदेशदापितमुख्या एकया स्त्रिया स कुमारको निष्क्रामन्नेव निर्भर्त्स्यार्विलम्वित: कोमलया बाहुलतया।' (पृ० 80)

इन कुलवधुओं के अतिरिक्त समाज में ऐसी कुलटाएँ भी थीं, जो अपने कुल की मान-मर्यादा को छोड़कर दूसरे कुल में चली जाती थीं— (उच्छिन्नाश्रयकातरेव कुलटा गोत्रातन्रं श्रीर्गता—6/5)। उस समय के समाज में वेश्याएँ भी थीं, जिन्हें 'वेशवनिता' (3/5) अथवा 'वेशनार्य:' (3/10) कहा गया है। वे 'कौमुदी महोत्सव' ऐसे अवसरों पर अपने स्थूल जघन-भार से मन्द-मन्द गति से चलती हुई पाटलिपुत्र के मार्गों को अलंकृत करती थीं और बातचीत करने में निपुण धूर्त लोग (विट) उनका पीछा करते थे—

धूर्तैरन्वीयमाना: स्फुटचतुरकथाकोविदैर्वेशनार्यो
नालंकुर्वन्ति रथ्या: पृथुजघनभराक्रान्तिमन्दै: प्रयातै: ।। (3/10)

उस समय दूतियाँ भी थीं, जिनका कार्य था—पति से रूठी हुई नायिकाओं को मनाना और उन्हें प्रसन्न कर उनके प्रियतमों से मिलाना। विशाखदत्त ने एक उपमा द्वारा दूती-कर्म की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है।[3]

---

2. वही, पृ० 80
3. वही, 3/9

स्त्रियों की बुद्धि बड़ी चंचल होती है, उन्हें पुरुष के गुणों की पहचान नहीं होती, इसका भी निरूपण नाटककार ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है—

प्रकृत्यां वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला।
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी ।। (2/7)

उस समय के समाज में कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ थीं, जिन्हें विषकन्या या विषाङ्गना कहते थे। इन्हें बचपन से ही स्वल्पमात्रा में विष दिया जाता था और युवती होने पर वे पूर्णत: विषमय हो जाती थीं तथा इनके संसर्ग से मनुष्य की मृत्यु हो जाती थी। पर्वतक की मृत्यु इसी प्रकार की विषकन्या से हुई थी।

इस प्रकार मुद्राराक्षस में नारी के विविध रूपों का दर्शन होता है। एक ओर जहाँ चपल वारांगनाएँ और रतिकथा-निपुण दूतियाँ दिखाई पड़ती हैं तो दूसरी ओर ऐसी कुलीन एवं साध्वी स्त्रियों का भी दर्शन होता है, जो पति के मरने पर स्वयं मृत्यु का वरण करती थीं, अर्थात् सती हो जाती थीं। चन्दनदास अपनी पत्नी को ऐसा करने से रोकता है।

वेष-भूषा और अलंकरण

विशाखदत्त के समय में स्त्रियों और पुरुषों की क्या वेष-भूषा थी, इसका मुद्राराक्षस में स्पष्टत: उल्लेख नहीं हैं, लेकिन लोग अधोवस्त्र और उत्तरीय अवश्य धारण करते होंगे, जैसा कि वैदिककाल में लोग धारण करते थे। समृद्ध लोग सुन्दरवस्त्र का बना वारवाण अर्थात् कञ्चुक पहनते थे, जिसमें मोतियों की माला जड़ी रहती थी (विमलमुक्तामणिपरिक्षेप विरचितचित्रपटमयवार-वाण प्रच्छादितशरीरे—पृ० 127)। सिर ढकने में अवगुण्ठन का प्रयोग किया जाता था '(कथमेष खल्वमात्यराक्षस: कृतशीर्षावगुण्ठन द्रुत एवागच्छति' पृ० 270)। अवगुण्ठन का आशय घूँघट लिया जाता है। कालिदास ने दुष्यन्त के दरबार में अवगुण्ठनवती शकुन्तला का प्रवेश कराया है (कास्विदवगुण्ठनवती—5/13)। मुद्राराक्षस के सप्तम अंक में चाणक्य का प्रवेश इस रूप में कराया गया है ('तत: प्रविशति जवनिकावृतशरीरो मुखमात्रदृश्यश्चाणक्य:')। यह संभवत: कोई वस्त्र होगा, जिससे अपने शरीर को ढक लिया जाता था, ताकि लोग पहचान न सकें। राजा लोग मुकुट धारण करते थे, जिनमें रत्न जड़े रहते (मणिमयमुकुट-निविडपियमितरुचिरतरमौलो)। आभूषण स्त्री और पुरुष दोनों पहनते थे। पर्वतेश्वर को भूषणवल्लभ कहा गया है। गले में पहने हुए आभूषणों से उसका मुख उसी प्रकार सुशोभित होता था, जैसे सन्ध्या समय नक्षत्रों के बीच में चन्द्रमा सुशोभित होता है (5/16)। किसी विशिष्ट व्यक्ति से मिलने जाने पर भी अलंकार पहने जाते थे, जैसा कि हम राक्षस को देखते हैं, जो बिना अलंकार धारण किये

मलयकेतु से मिलना ठीक नहीं समझता—

'यथा परिधापिता कुमारेणाभरणानि वयम्। तन्न युक्तमनलङ्कृतैः कुमार-दर्शनमनुभवितुम्।'

साधारण लोग भी कभी-कभी अलंकार धारण करते थे। सिद्धार्थक मलयकेतु-कटक से निकल कर पाटलिपुत्र में अपने मित्र समिद्धार्थक से मिलने जाता है, तब वह आभूषण पहने रहता है ('ततः प्रविशत्यलङ्कृतः सहर्षः सिद्धार्थकः)। ये आभूषण अलंकार पेटियों में रखे जाते थे (आर्य, इयं मुद्रा-लाञ्छिता पेटिका तस्य कक्षातो निपतिता')। इसे अलंकरणस्थगिका भी कहा है (ततः प्रविशति लेखमलंकरणस्थगिकां मुद्रितामादाय सिद्धार्थकः')। उस समय स्त्रियां अपने सौन्दर्यवर्धन का विशेष ध्यान रखती थीं। उनके घुँघुराले केश भौंरों के समान काले रहते थे और वे अपने कपोलों में लोध्र पुष्पों के पराग का लेप करती थीं (5/23)। कालिदास के समय में भी यह एक प्रसाधन की सामग्री थी। उस समय भी स्त्रियाँ अपने मुखों में इसे लगाती थीं (नीता लोध्र-प्रसवरजसा पाण्डुतामाननश्रीः, मेघदूत, उत्तर मेघ 2)। विशिष्ट अवसरों पर पृथ्वी पर चन्दन-जल का छिड़काव होता था ('क्षिप्रं चन्दनवारिणा सकुसुमः सेकोऽनगृह्णातु गाम्—3/2)। इससे उस समय की समृद्धि का भी आभास होता है।

मनोरंजन

मानव-जीवन में आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन का भी विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके बिना तो जीवन बिल्कुल नीरस ही हो जाएगा। मुद्राराक्षस में इसके लिए क्रीडारस शब्द का प्रयोग हुआ है—'सद्यः क्रीडारसच्छेदं प्राकृतोऽपिन मर्षयेत्' (4/10)।

इस मनोरंजन के लिए नाटक खेले जाते थे और संगीत का भी अनुष्ठान किया जाता था, जैसा कि सूत्रधार के इस कथन से ज्ञात होता है—'तद्यावदिदानीं गृहं गत्वा गृहजनेन सह संगीतकमनुतिष्ठामि')। संगीत में गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों की गणना होती है (गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते)। सांसारिक दुखो से उत्पीड़ित लोगों के जीवन में मनोरंजन का होना परमावश्यक है। इस निमित्त समय-समय पर उत्सव भी मनाये जाते थे। कौमुदीमहोत्सव भी इसी प्रकार का उत्सव है जो कार्तिकी पूर्णिमा को विशाखदत्त के समय में मनाया जाता था। इस अवसर पर सम्पूर्ण नगर को सजाया जाता था और लोग सजधज कर निकलते थे और बड़े उल्लास के साथ इसे मनाते थे। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' (1/4/27) में इसे 'कौमुदीजागर' कहा गया है, जो जयमंगला टीका के अनुसार आश्वयुजी अर्थात् क्वांर मास की पूर्णिमा को मनाया जाता था।

अभिवादन

विशाखदत्त के समय का समाज अत्यन्त शिष्ट था। लोग अभिवादन-प्रत्याभिवादन के नियमों के ज्ञाता थे। लोग अपने से बड़ों के लिए 'आचार्य' शब्द का प्रयोग करते और अपरिचित के लिए 'भद्र' शब्द का। लोग हाथ जोड़कर प्रणाम करते थे, जैसे कि प्रतीहारी की इस उक्ति से ज्ञात होता हैं—'आर्य, देवश्चन्द्रश्री: शर्षे कमलमुकुलाकारमञ्जलिं निवेश्य आर्यं विज्ञापयति'। कभी-कभी अपने से बड़ों को प्रणाम करने में लोग साष्टांग प्रणिपात भी करते थे, जैसा कि चाणक्य के प्रति चन्द्रगुप्त के आचरण में देखा जाता है जो चाणक्य के आने पर सिंहासन से उठ खड़ा होता है और उसके चरणों में गिर पड़ता है—(आसानादुत्थाय) *आर्य चन्द्रगुप्तः प्रणमति (इति पादयोः पतति)*।

इसके विनिमय में पूज्य व्यक्ति आशीर्वाद भी देता था: जैसा कि चाणक्य करता है और चन्द्रगुप्त को 'आशैलेन्द्रात्' (3/19) के रूप में सार्वभौम सम्राट होने का आशीर्वाद देता है। इस प्रकार का आशीर्वाद संस्कृत साहित्य में अनुपम है। पुत्र पिता के चरणों पर गिरकर प्रणाम करता था, जैसा कि चन्दनदास का पुत्र अपने पिता के प्रति करता है।

इस प्रकार विशाखदत्त के समय के अत्युन्नत एवं सभ्य मानव-समाज का दर्शन मुद्राराक्षस में होता है।

तत्कालीन भारत की भौगोलिक स्थिति

'आशैलेन्द्रात्' (3/19) श्लोक में विशाखदत्त ने भारत का जो मानचित्र खींचा है, उसके अनुसार उत्तर में शैलाधिराज हिमालय है, जिसकी शिलाओं पर गंगा गिरती है और जो उसके जल-बिन्दुओं की वर्षा से सदा शीत रहता है। उसके दक्षिण में समुद्र है, जो अनेक वर्ण की मणियों की कान्ति से देदीप्यमान रहता है। अन्य सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि उस समय पूर्व में भारत बंग देश तक विस्तृत था, जहाँ गंगा सिन्धुपति (बंगाल की खाड़ी) में लीन हो जाती है।[1] पश्चिम में वह पारसीक (फ़ारस) देश तक फैला हुआ था, जिस देश का राजा मेघ अपनी विशाल अश्व सेना के साथ मलयकेतु की सहायता के लिए आया था, इसके अतिरिक्त मलयकेतु की सेना में कुलूत, मलय, कश्मीर और सिन्ध देश के क्रमश: चित्रवर्मा, सिंहनाद, पुष्कराक्ष तथा सिंधुषेण राजा अपनी सेनाओं के साथ सम्मिलित थे।[2]

मलयकेतु का पिता पर्वतेश्वर अथवा पर्वतक संभवत: पार्वत्य प्रदेश का रहने वाला था, जैसा कि उसके नाम से विदित होता है। उसका राज्य भारत के उत्तर में था, जो पूर्व में मलयदेश, दक्षिण में कुलूत तथा पश्चिम में कश्मीर से घिरा था। सिद्धार्थक वाचिक कथन में इन तीनों देशों के राजाओं द्वारा मलयकेतु के राज्य विभजान की चर्चा है।[3] इससे स्पष्ट होता है कि ये सब राज्य मलयकेतु के सीमावर्ती राज्य थे। चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर की सम्मिलत सेना ने जब कुसुमपुर (पाटलिपुत्र)

---

1. मुद्रा० 3/9
2. वही, 1/20
3. वही, पृ० 240

पर घेरा डाला था, उस समय उस सेना में शक, यवन, किरात तथा कम्बोज, पारसीक तथा वाह्लीक आदि देशों के सैनिक थे—

अस्ति तावच्छक-यवन-किरात-काम्बोज-पारसीक-बाह्लीक-प्रभृतिभिश्-चाणक्यमतिपरिगृहीतैश्चन्द्रगुप्तपर्वतेश्वरबलैरुदधिरिव प्रलयोच्चलित-सलिलैः समन्तादुपरुद्धं[4] कुसुमपुरम् ।

ये सभी भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित देशों के लोग थे। इसी प्रकार पांचवें अंक में जहाँ राक्षस द्वारा सेना की सम्यक् व्यूह-व्यवस्था कर पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने का उल्लेख है, वहाँ खस, मगध, गान्धार, यवन, शक, चीन अथवा चेदि, हूण तथा कुलूत आदि देशों के सैनिकों की चर्चा है—

प्रस्थातव्यं पुरस्तात्खसमगधगुणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यै-
र्गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभिः संविधेयः प्रयत्नः ।
पश्चात्तिष्ठन्तु वीराः शकनरपतयः सम्भृताश्चीण (चेदि) हूणैः
कौलूताद्यश्च शिष्टः पथि-पथि वृणुयाद्राजलोकः कुमारम् ।। (5/11)

मुद्राराक्षस में इन सब देशों के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि इन देशों की भौगोलिक स्थिति से विशाखदत्त पूरी तरह अवगत थे। ये देश किस भू-भाग में स्थित थे, इसकी जानकारी बिमल चरण लाहा की 'हिस्टोरिकल ज्यागरफ़ी ऑव एन्श्यंट इंडिया' के अनूदित संस्करण, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल[5], रणजीत सीताराम पण्डित की 'द सिगनेट रिंग'[6] और एच. सी. राय चौधरी की 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्श्यन्ट इण्डिया' के आधार पर दी जा रही है—

कुलूत—इस देश के निवासी कौलूत कहलाते थे। यह देश व्यास नदी की ऊपरी घाटी में स्थित था। सातवीं शताब्दी में भारत आये चीनी यात्री हुएनत्सांग अथवा युवानच्वाङ् ने इसे देखा था और इसका नाम 'कि-यु-लु-तु' (Kiu-luto.) दिया है। इसी का वर्तमान नाम कुलू है।

मलय—इस देश की स्थिति संदिग्ध है। संभवतः यह रावी और गण्डकी नदी के मध्य में स्थित था। मुद्राराक्षस में इसका राजा सिंहनाद कहा गया है, जो मनुष्यों में सिंह (सिंहनादो नृसिंहः) के समान था।

---

4. वही, पृ० 122
5. उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ से 1972 में प्रकाशित।
6. न्यू बुक कम्पनी, हार्नबाई रोड, बम्बई, 1944
7. कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1950

कश्मीर—यह आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इसके रहनेवाले काश्मीरी कहलाते थे। इसका राजा पुष्कराक्ष था, जिसके नेत्र संभवतः कमल के समान सुन्दर रहे होंगे।

सिन्धु—संभवतः यह देश सिन्धु नदी के दोनों तटों पर बसा होगा। आज भी यह सिन्ध नाम से प्रसिद्ध है। इस देश के रहनेवाले सैन्धव कहलाते थे। मुद्राराक्षस में इसके राजा का नाम सिन्धुषेण बताया गया है, जो इस बात को ध्वनित करता है कि उसकी सेना सिन्धु नदी के उद्दाम प्रवाह की भाँति अथवा समुद्र की तरह उमड़ती, गरजती चलती होगी।

पारसीक—यह नाम मुद्राराक्षस में चार बार(पृ० 8 4,122,240 और 257) प्रयुक्त हुआ है। इसका राजा मेघ अथवा मेघनाद (अन्तिम दो स्थलों पर) बताया गया है। यह नाम भी सार्थक है; क्योंकि यह युद्ध में मेघों के समान गर्जना करता होगा। इसके पास विशाल अश्ववाहिनी थी वर्तमान फ़ारस या ईरान देश से इसका समीकरण किया जा सकता है।

शक—शक और यवनों का साथ-साथ उल्लेख होने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके स्थान एक दूसरे के निकट थे। शक संभवतः भारत के उत्तर-पश्चिम में सिन्धुनदी और समुद्र के बीच के भूभाग में बसे थे। गुप्तकाल के पूर्व शकों की बड़ी सुदृढ़ स्थिति थी; क्योंकि ये गुप्त राजाओं के लिए निरन्तर उत्पीड़क थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय ने इन्हें पूर्णतः पराजित कर शकारि की उपाधि धारण की थी।

यवन—ये यूनानी थे, जो सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व अफगानिस्तान और उसके निकटवर्ती जनपदों में बस गये थे। बाद में यह शब्द 'बैक्ट्रिया' के यूनानियों के लिए व्यवहृत होने लगा, जिन्होंने मौर्यों के पतन पर उनके साम्राज्य के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया था। प्राचीन पारसी यूनानियों को ही यवन कहते हैं। पालि साहित्य में पश्चिमी अफ़गानिस्तान को यवन देश कहा गया है। पतञ्जलि के महाभाष्य से पता चलता है कि किसी यवन ने साकेत (अयोध्या) और माध्यमिका (चितौड़ के पास) पर आक्रमण किया था (अरुणद्यवनः साकेतम् अरुणद् यवनो माध्यमिकाम्)। बाद में शुंग राजाओं ने इनके विस्तार को रोका।

किरात—ये लोग संभवतः हिमालय और तिब्बत में स्थित थे। किसी ने इन्हें उत्तरापथ में, तो किसी ने गंगा नदी के मुहाने के पश्चिम में स्थित बतलाया है। महाभारत शान्ति पर्व 65/13-15 में इन्हें शक, यवन, गान्धार, कम्बोज आदि के साथ वर्णित किया गया है, जो आर्यों के धर्म और रीति-रिवाजों को छोड़ने के कारण पतित हो गये थे।

कम्बोज—यह छठी शताब्दी ई. पू. में सोलह महाजनपदों में से एक था।

इस देश की स्थिति गान्धार के समीप उत्तर-पश्चिम भारत में थी। किसी ने इसे कश्मीर के उत्तर में, तो किसी ने हिन्दूकुश के उत्तर-पूर्व में स्थित बताया है। इस देश के रहनेवाले काम्बोज कहलाते थे। यह देश उत्तम जाति के अश्वों के लिए प्रसिद्ध था। क्षेमेन्द्र ने कालिदास के मन्दाक्रान्ता की उपमा काम्बोज देश की तुरगांगना (घोड़ी) से दी है—

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति।
सदश्वदमकस्येव कम्बोजतुरगांगना ।। (सुवृत्ततिलक, 3/34)

बाह्लीक—यह ईरान के बलख का प्राचीन नाम है। यह प्रदेश कम्बोज के पश्चिम में स्थित था। चन्द्र के मेहरौली स्तम्भ में बाह्लीकों को सिन्धुपार बतलाया गया है। कुछ लोगों ने बाह्लीकों को बैक्ट्रिया की जनजातियाँ माना है; जो चनाव और व्यास नदियों के बीच में बस गयी थीं।

खस—यह कश्मीर के सीमाप्रान्त में रहनेवाली जनजाति थी, जिसका उल्लेख कल्हण ने 'राजतरंगिणी' में लगभग चालीस बार से अधिक किया है। खस शब्द कुमायूं की पहाड़ियों में अभी भी प्रचलित है। श्री लका के ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है कि अशोक ने पंजाब के उत्तरी भाग मे इन्हें पराजित किया था। यह जाति अभी भी कश्मीर की सीमा पर पीरपन्तसाल (Pirpantsal) पर्वत-श्रेणी के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में निवास करती है और खख नाम से जानी जाती है।

मगध—आधुनिक बिहार का दक्षिणी भाग, जिसमें पटना और गया ज़िले हैं, कभी मगध कहलाता था। यह सोलह महाजनपदों में से एक था। इस राज्य के उत्तर में गंगा, पश्चिम में शोण और पूर्व में चम्पा नदी बहती थी, जो अंग देश से इसको पृथक् करती हुई गंगा में मिल जाती थी। इस राज्य के दक्षिण में विन्ध्य की पर्वत-श्रेणियाँ थीं। बुद्ध के समय में इसमें बिम्बसार का शासन था और इसकी राजधानी राजगृह थी। बाद में इसकी राजधानी पाटलिपुत्र हुई, जिसका 'मुद्राराक्षस' में वर्णन है। चीनी यात्री फाह्यान ने, जो चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य द्वितीय के समय में भारत आया था, मगध राज्य की बड़ी प्रशंसा की है और कहा है कि सारे भारतवर्ष में यहाँ के लोग सबसे अधिक सुखी और समृद्ध हैं।

गान्धार—यह सोलह महाजनपदों में से एक था। गान्धार आर्यों की ही एक जाति थी, जो पूर्वी अफगानिस्तान में बस गयी थी। वर्तमान रावलपिण्डी और पेशावर ज़िलों का भूभाग प्राचीनकाल में गान्धार राज्य था। यह सिन्धु के दोनों ओर स्थित था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी जो प्राचीनकाल में व्यापार और विद्या की केन्द्रस्थली थी। भरत के पुत्र तक्ष के नाम पर तक्षशिला नाम पड़ा होगा और उनके दूसरे पुत्र पुष्कल के नाम पर पुष्करावती। ये दोनों गान्धार देश की प्राचीन राजधानियाँ थीं। हुएनत्सांग ने इस देश को पूर्व से पश्चिम एक हजार मील से अधिक और उत्तर से दक्षिण आठ सौ मील से अधिक बताया है। और यह भी कहा

है कि यह राज्य अधिक समृद्ध था; यहाँ की जलवायु उष्ण थी और यहाँ के लोग भीरु तथा कलाप्रेमी थे।

चीन अथवा चेदि—पूर्व उद्धृत श्लोक में चीन और चेदि दोनों पाठ आये हैं। डॉ. विमल चरण लाहा (Dr. B. C. Law) के अनुसार चीन हिमालय क्षेत्र में चिलात या किरात के उस पार स्थित था। चेदि सुत्तपिटक के अंगुत्तरनिकाय में वर्णित जम्बूद्वीप के सोलह महाजनपदों में से एक था। यह यमुना के किनारे स्थित था। डॉ. लाहा ने इसे आधुनिक बुन्देलखण्ड और उसके समीप का क्षेत्र माना जाता है। यह कभी बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान था। दीघनिकाय के अनुसार बुद्ध यहाँ धर्म-प्रचार के लिये आये थे।

हूण—रणजीत सीताराम पण्डित ने 'द सिग्नेट रिंग' (The Signet Ring) में कहा है कि मौर्यकाल के पूर्व हूण अज्ञात थे। उनके भारत पर आक्रमण स्कन्दगुप्त के पूर्व नहीं प्रारम्भ हुए थे। स्कन्दगुप्त ने उनके प्रथम आक्रमण को 455 ई० में रोका। ये ऑक्सस (oxus) और अफ़गानिस्तान के पर्वतीय क्षेत्र में बसे हुए थे और इनके आक्रमण भारत के पश्चिमी भाग पर लगातार होते रहते थे और कन्नौज के मौखरी तथा थानेसर के वर्द्धनवंशीय सम्राटों के लिए ये स्थायी संकटरूप थे। कन्नौज के अवन्तवर्मा और थानेसर के महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने इन्हें पराजित किया और प्रभाकरवर्द्धन ने 'हूणहरिणकेसरी' की उपाधि धारण की।[8]

पाटलिपुत्र—मुद्राराक्षस में पाटलिपुत्र को कुसुमपुर या पुष्पपुर नामों से भी अभिहित किया गया है। तेलंग मुद्राराक्षस के संस्करण में पाटलिपुत्र का सात बार, कुसुमपुर का लगभग सत्रह बार और पुष्पपुर का एक बार उल्लेख हुआ है। किसी-किसी ने द्वितीय अंक में 'ततः समन्तादपरुद्धं कुसुमपुरमवलोक्य' यहाँ 'कुसुमपुरम्' के स्थान पर 'पुष्पपुरम्' पाठ माना है। रणजीत सीताराम पण्डित के अनुसार पाटलि एक पुष्प का नाम है, जिसके आधार पर इस नगर का नाम पाटलिपुत्र पड़ा। सभवतः इसीलिए नाटक में इसे कुसुमपुर और पुष्पपुर भी कहा गया है। वह गंगा के तट पर बसा हुआ था; क्योंकि चन्द्रगुप्त का राजभवन सुगांग-प्रासाद गंगा के किनारे स्थित था। पतंजलि ने महाभाष्य में इसे शोण के तट पर स्थित माना है (अनुशोणं पाटलिपुत्रम्) और चतुर्थ शताब्दी ई० पू० में मेगस्थनीज ने इसे गंगा और शोण के संगम पर स्थित बताया है। नाटक में हम इसे गंगा और शोण के संगम पर न पाकर गंगा के किनारे पाते हैं। शोण नर्मदा के उद्गम-स्थल से कुछ ही दूर अमरकण्टक पठार से निकलकर पहले उत्तर की ओर और फिर पूर्व की ओर बहती हुई पटना के पश्चिम में गंगा में मिलती है। संभवतः ऐसी ही कुछ स्थिति विशाखदत्त के समय में थी; क्योंकि उसे पारकर ही पाटलिपुत्र जाया जा सकता था,

---

8. हूणहरिणकेसरी···प्रभाकरवर्द्धनो नाम राजाधिराजः हर्षचरित, उच्छ्वास 4

जैसा कि 'उत्तुगास्तुंग कूलम्' (4/16) इस श्लोक से ज्ञात होता है। इतिहासकारों के अनुसार गंगा के दक्षिण में पाटलि नामक एक ग्राम था। इस ग्राम में दुर्गनिर्माण बुद्ध के जीवन-काल में हुआ था, वाद में इस स्थान पर एक विशाल नगर की नींव पड़ी, जो पाटलिपुत्र कहलाया और मगध राज्य की राजधानी वना। मगध को पूर्ण वैभव प्रदान करनेवाला अजातशत्रु था। अजातशत्रु की विजयों के कारण मगध देश की उत्तरी सीमा हिमालय की तलहटी तक पहुँच गयी थी। फाह्यान जो पाँचवी शताब्दी में भारत आया था, इस नगर के अपार वैभव से वहुत प्रभावित हुआ था; लेकिन सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्रुएनत्साँग ने इसे ध्वंसावशेष रूप में देखा। गुप्तवंशीय राजाओं तक यह मगध की राजधानी थी।

इस प्रकार विभिन्न स्रोतों के आधार पर हम विशखादत्त के समय में भारत की स्थिति का दर्शन करते हैं।

□

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. **कथासरित्सागर**—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1930
2. **कादम्बरी**—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1921
3. **कामन्दकीय नीतिसार**—(द्वितीय आवृत्ति) आनन्दाश्रम, पूना, 1977
4. **किरातार्जुनीय**—चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1981
5. **कुमार सम्भव**—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1981
6. **कौटिलीय अर्थशास्त्र**—हिन्दी अनुवादक : वाचस्पति गैरौला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1982
7. **दशरूपक**—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1941
8. **प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल**—विमल चरण लाहाविरचित 'Historical Geograpny of Ancient India' का हिन्दी अनुवाद, अनुवादक : रामकृष्ण द्विवेदी, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1972
9. **मनुस्मृति**—चौखम्बासंकृत सिरीज आफ़िस, वाराणसी, 1970
10. **मुद्राराक्षस**—काशिनाथ त्र्यंम्बक तेलंग द्वारा सम्पादित (आठवीं आवृत्ति) पाण्डुरंग जीवाजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1935
11. **मुद्राराक्षस**—के. एच. ध्रुव द्वारा सम्पादित्त (तृतीय आवृत्ति) अरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, 1930
12. **मुद्राराक्षस**—मोरेश्वर रामचन्द्र काले द्वारा सम्पादित (तृतीय आवृत्ति) बम्बई 1916
13. **मुद्राराक्षस**—शारदारंजन राय द्वारा सम्पादित (द्वितीय आवृत्ति) कलकत्ता, 1929

14. **मुद्राराक्षस**—कनकलाल ठक्कुर विरचित भावबोधिनी-आशुबोधिनी संस्कृत-हिन्दी टीका युक्त, श्री हरिकृष्ण निबन्ध भवन, बनारस सिटी 1943,
15. **मुद्राराक्षस**—डॉ. सत्यव्रत सिंह विरचित शशिकला टीकायुत, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफ़िस, वाराणसी 1954
16. **मुद्राराक्षस**—निरूपण विद्यालंकार द्वारा संस्कृत व्याख्या, हिन्दी अनुवाद सहित, साहित्य भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ, 1962
17. **मुद्राराक्षस का सांस्कृतिक अनुशीलन**—डॉ. हीरालाल शुक्ल, विश्व-भारती प्रकाशन, नागपुर 1976
18. **मृच्छकटिक**—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1936
19. **रघुवंश**—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1925
20. **वैदिक इण्डेक्स**—(भाग 1,2): मैकडानल और कीथ; अनुवादक: रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1962
21. **शिशुपालवध**—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1940
22. **संस्कृत नाटक**—मूल लेखक ए. बी. कीथ, अनुवादक: उदयभानु सिंह मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (द्वितीय संस्करण) 1971
23. **संस्कृत साहित्य का इतिहास**—ए. बी. कीथ, अनुवादक: डा. मंगल-देव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (द्वितीय संस्करण) 1967
24. **संस्कृत साहित्य का इतिहास**—आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी 1973
25. **सुभाषितत्रिशती**—भर्तृहरि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1925
26. **सुभाषितरत्न भाण्डागार**—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1952
27. **सुवृत्ततिलक**—क्षेमेन्द्र, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफ़िस वाराणसी, 1968
28. **हर्षचरित**—बाणभट्ट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1918
29. **History of Classical Sanskrit Literature**
M. Krishnamachariar, Moti Lal Banarsidas Delhi, Third edition, 1974.
30. **Introduction to the Study of Mudra Rakshas**
G. V. Devasthali, Keshav Bhikaji Dhavale, Bombay, 1948
31. **Mudra Rakshasa**
Edited by Dr. Alfred Hillebrandt, Breslau, 1912

32. **Mudra Rakshsa or The Signet Ring,**
English translaton and notes by R. S. Pandit, New Book Company, Bomaby. 1944.
33. **Political History of Ancient India**
Hem Chandra Ray Chaudhuri, Fifth editon, University of Calcutta. 1950
34. **Select Specimens of the Theatre of the Hindus**
(Vol. I, II) by Horace Hayman, Third edition, London, 1871.

□